अब हम अपनी तीसरी बात की जांच के लिए उद्यत होते हैं। वह धर्म्मसम्बन्धी तथा वेद और स्मृति इत्यादि पुस्तकों की रचना की बात है। अब तक हम इस परीक्षा में तत्पर थे कि स्टाइल या वाक्यरचना एक बाहरी और कृत्रिम वस्तु है। इस से उसका किसी दूसरी भाषा में अनुवादित होना कठिन होता है! अब हम इसका विचार करते हैं कि वेद आदि धार्म्मिक ग्रन्थ इस प्रकार की अलङ्कृत रचना से सर्वथा मुक्त हैं कि नहीं! क्या आप समझते हैं कि उनमें कहीं शब्दवैचित्र्य अलङ्कार, और सरसता नहीं हैं? इस वेदान्त वाक्य ही को लीजिए—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम्॥

क्या यह समझने में कठिन नहीं है? क्या इसमें रूपक अलङ्कार नहीं है? मैं तो कहता हूं कि जितना अंश ऐसे ग्रन्थों का अलंकृत रचना इत्यादि लक्षणों से रहित है, और जो शुद्ध सीधी सादी भाषा में पवित्र पदार्थों का बोध करता है, वह विज्ञान के अन्तर्गत है, साहित्य के नहीं।

ऊपर जो बातें कही गईं उन सब का अब मैं सारांश प्रकाशित करता हूं, कि साहित्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा चुका है कि वह "विचारों" का शब्दों में अवतीर्ण होना है। और विचारों से तात्पर्य्य कल्पना, अनुभव, विवेचना तथा और अन्यान्य मन की क्रियाओं से है। साहित्य उन श्रेष्ठ मनुष्यों की शिक्षा और वार्ता है जिन्हें अपनी जाति के प्रतिनिधि रूप में बोलने का अधिकार प्राप्त है और जिनके शब्दों में उनके स्वदेशीय बन्धुगण अपने अपने भावों का प्रतिबिम्ब देखते हैं और अपने अनुभव के सारांश का पता लगाते हैं।

उत्तम ग्रन्थकार वह नहीं है जो, गद्य या पद्य में, सुन्दर भड़कीले भड़कीले शब्दों से गुथा हुआ कोई पद बना सके; उत्कृष्ट कवि वही है जिसे कुछ कहना होता है और जो यह जानता है कि उसे किस प्रकार कहना चाहिए। मैं उसके लिए सूक्ष्म और गहरे विचार, ज्ञान की अधिकता, न्याय और तर्कना, तथा मानुषी प्रकृति का अध्ययन इत्यादि आवश्यक नहीं बतलाना चाहता हूं। उस की ईश्वर-प्रदत्त-प्रतिभा ही प्रगट करने की शक्ति है। वह दो वस्तुओं का स्वामी है। "विचार" और "शब्द" ये दो नाम में तो एक दूसरे से भिन्न हैं; किन्तु पृथक् नहीं किये जा सकते। वह उद्वेग के साथ लिखता है, क्योंकि वह तीव्र अनुभव करता है; जोर के साथ लिखता है क्योंकि वह प्रत्यक्ष देखता है; उसकी दृष्टि स्वच्छ है, इस कारण उस की रचना में कहीं गड़बड़ नहीं होता। कल्पनायें उसके हृदय से उठती हैं और उसके मुख से सुन्दर सुन्दर शब्दों का रूप धारण करके निकलती हैं। जब उसके चित्त पर कोई प्रभाव पड़ता है तब उसकी सारी काल्पनिक सृष्टि कम्पायमान हो जाती है। शुद्ध कल्पना के प्रगट करने को वह शुद्ध और तदनुकूल शब्द रखता है। एक भी शब्द अधिक किम्वा कम नहीं। यदि वह संक्षेप में कोई बात कहता है तो इस लिए कि वहां थोड़े ही शब्दों की आवश्यकता रहती है। जहां अधिक शब्द रख कर वह अपनी रचना को विस्तृत करता है वहां भी हर एक शब्द अपना अपना लक्ष्य रखता है, और सब मिलकर उसकी वाणी की प्रौढ़गति को सहायता पहुँचाते हैं, न कि उसको अपने बोझ से दबाते हैं। वह उसको प्रगट करता है जिसका अनुभव सब करते हैं; किन्तु प्रगट नहीं कर सकते। उसकी बातें उसके देश के लोगों में कहावत के रूप में प्रचलित हो जाती हैं और उसके वाक्य लोगों की नित्य प्रति की बोलचाल में व्यवहृत होने लगते हैं।

हम लोगों में कालिदास और अंग्रेज़ी में शेक्सपियर इसी प्रकार के कवियों में हैं। भाषाओं में विभिन्नता के कारण उनका सम्बन्ध किसी एक

ही से हो जाता है; किन्तु जो बात वे प्रकट करते हैं वह सम्पूर्ण मनुष्यजाति से सम्बन्ध रखती है।

यदि वाणी की शक्ति ईश्वर का सबसे उत्तम प्रसाद है; यदि भाषा की उत्पत्ति बहुत से विद्वानों द्वारा ईश्वर से मानी गई है; यदि शब्दों द्वारा अन्तःकरण के गुप्त-रहस्य प्रगट किये जाते हैं; चित्त की वेदना को शान्ति दी जाती है; हृदय में बैठा हुआ शोक बाहर निकाल दिया जाता है; दया उत्पन्न की जाती है और बुद्धि चिरस्थायी बनाई जाती है; यदि बड़े बड़े ग्रन्थकारों द्वारा बहुत से मनुष्य मिलाकर एक बनाये जाते हैं; जातीय लक्षण स्थापित होता है; भूत और भविष्य तथा पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं; और यदि ऐसे लोग मनुष्यजाति में अवतार-स्वरूप माने जाते हैं—तो साहित्य की अवहेलना करना और उसके अध्ययन से मुख मोड़ना कितनी बड़ी भारी कृतघ्नता है! हम लोगों को यह दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि जितना ही हम इसमें, चाहे जिस भाषा द्वारा हो, अधिकार प्राप्त करेंगे और उसके रस का आस्वादन करेंगे, उतना ही हम दूसरों को लाभ पहुंचाने में समर्थ होंगे,—चाहे वे कम हों या अधिक, धनी हों या दरिद्र; क्योंकि वे सब हमारी लेखनी के प्रभाव-मण्डल के भीतर आ जायंगे।*

रामचन्द्र शुक्ल।

"इत्यादि" की आत्मकहानी।

"शब्दसमाज" में मेरा सम्मान कुछ कम नहीं है। मेरा इतना आदर है कि वक्ता और लेखक लोग मुझे बलात्कार घसीट ले जाते हैं। दिन भर में, न जाने मेरे पास कितने बुलावे आते हैं। सभा, सोसायटियों में जाते आते मुझे नींद भर सोने की भी छुट्टी नहीं मिलती। यदि मैं बिना बुलाये भी कहीं जा पहुंचता हूं तौभी सम्मान के साथ स्थान पाता हूं। सच पूछिए तो "शब्द-समाज" में यदि मैं, "इत्यादि", न रहता, तो लेखकों और वक्ताओं की नजाने, क्या दुर्दशा होती। पर हा! इतना सम्मान पाने पर भी किसीने आज तक मेरे जीवन की कहानी नहीं कही। संसार में जो ज़रा भी काम करता है उसके लिये लेखक लोग खब नमक मिर्च लगा कर पोथे के पोथे रँग डालते हैं; पर मेरे लिए एक सतर भी किसी की लेखनी से आज तक न निकली। पाठक, इसमें एक भेद है।

यदि लेखक लोग मेरे गुण सर्वसाधारण पर प्रकाश करते तो उनकी योग्यता की क़लई ज़रूर खुल जाती; क्योंकि उनको शब्ददरिद्रता की दशा में मैं ही उनका एक मात्र अवलम्ब हूं। अच्छा, तो, आज, मैं चारों ओर से निराश होकर आपही अपनी कहानी कहने और गुणावली गाने बैठा हूं। पाठक, आप मुझे "अपने मुँह मियाँ मिट्ठू" बनने का दोष न लगावें। मैं इसकी क्षमा चाहता हूं।

अपने जन्म का सन्-संवत-मिती-दिन-मुझे कुछ भी याद नहीं है। याद है केवल इतना हीं कि जिस समय "शब्द का महा अकाल" पड़ा था, उसी समय मेरा जन्म हुआ था। मेरी माता का नाम "इति" और पिता का "आदि" है। मेरी माता अविकृत "अव्यय" घराने की है। मेरे लिए यह थोड़े गौरव की बात नहीं है; क्योंकि भगवान फणीन्द्र की कृपा से "अव्यय" वंशवाले, प्रतापी महाराज "प्रत्यय" के कभी आधीन नहीं हुए। सदा स्वाधीनता से विचरते आये हैं।

मैं जब लड़का था, तब मेरे मा बाप ने एक ज्योतिषी से मेरे अदृष्ट का फल पूछा था। उन्होंने कहा था कि यह लड़का विख्यात और परोपकारी होगा; अपने समाज में यह सबका प्यारा बनैगा; पर दोष है तो इतनाहीं कि यह कुँवारा ही रहेगा। विवाह न होने से इसके बालबच्चे न होंगे। मा बाप के मन में यह सुन कर पहले तो थोड़ा दुःख हुआ; पर क्या किया जाय? होनहार ही यह था। इसलिए

---

* Newman's Idea of a University के Literature नामक निबन्ध के आधार पर।

शोच छोड़कर उन्हें सन्तोष करना पड़ा। उन दोनों ने, अपना नाम चिरस्मरणीय करने के लिए (मुझसे ही उनके वंश की इति श्री थी) मेरा नाम कुछ और नहीं रक्खा। अपने हीं नामों को मिला कर वे मुझे पुकारने लगे। इससे मैं "इत्यादि" कहलाया।

पुराने ज़माने में मेरा इतना नाम नहीं था। कारण यह, कि एक तो लड़कपन में थोड़े लोगों से मेरी जान पहचान थी; दूसरे उस समय बुद्धिमानों के बुद्धिभाण्डार में शब्द की दरिद्रता भी न थी। पर जैसे जैसे शब्ददारिद्र्य बढ़ता गया, वैसे वैसे मेरा सम्मान भी बढ़ता गया। आजकल की बात मत पूछिए। आजकल मैं मैंही हूं। मेरे समान सम्मानवाला इस समय मेरे समाज में बहुधा विरलाही ठहरेगा। आदर की मात्रा के साथ मेरे नाम की संख्या भी बढ़ चली है। आज कल मेरे अनेक नाम हैं—भिन्न भिन्न भाषा के "शब्द-समाज" में मेरे नाम भी भिन्न भिन्न हैं। मेरा पहरावा भी भिन्न भिन्न है-जैसा देस वैसा ही भेस बना कर मैं सर्वत्र विचरता हूं। आप तो जानते ही होंगे कि सर्वेश्वर ने हम "शब्दों" को सर्वव्यापक बनाया है। इसीसे मैं, एकही समय, अनेक ठौर काम करता हूं। इस घड़ी विलायत की पार्लियामेण्ट महासभा में डटा हूं; और इसी घड़ी भारत की पण्डितमण्डली में भी विराजमान हूं। जहां देखिए वहां ही मैं परोपकार के लिए उपस्थित हूं।

मुझमें यह एक भारी गुण है, कि क्या राजा, क्या रङ्क, क्या पण्डित, क्या मूर्ख, किसी के घर जाने आने से मैं सङ्कोच नहीं करता; और अपनी मानहानि नहीं समझता। और "शब्दों" में यह गुण नहीं। वे बुलाने पर भी कहीं जाने आने में बड़ा गर्व करते हैं। बहुत आदर चाहते हैं। जाने पर सम्मान का स्थान न पाने से रूठकर उठ भागते हैं। मुझमें यह बात नहीं। इसीसे मैं सबका प्यारा बना हूं।

परोपकार और दूसरे की मानरक्षा तो मानो मेरा धन्धा ही है। यह किये बिना मुझे एक पल भी कल नहीं पड़ती। संसार में ऐसा कौन है जिसके, अवसर पड़ने पर, मैं काम नहीं आता? निर्धन लोग जैसे भाड़े पर कपड़ा लत्ता पहन कर बड़े बड़े समाजों में बड़ाई पाते हैं, कोई उन्हें निर्धन नहीं समझता,—वैसे ही मैं भी छोटे छोटे वक्ताओं और लेखकों की दरिद्रता झट पट दूर कर देता हूं। अब दो एक दृष्टान्त लीजिए—

वक्ता महाशय वक्तृता देने को उठ खड़े हुए हैं। अपनी पण्डिताई दिखाने के लिए सब शास्त्रों की बात थोड़ी बहुत कहनी चाहिए। पर शास्त्र का जानना तो अलग रहा, उन्हें किसी शास्त्र का पन्ना भी उलटने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इधर उधर से सुन कर दो एक शास्त्र और शास्त्रकार का नाम भर जान लिया है। कहने को तो खड़े हुए हैं, पर कहें क्या? अब लगे चिन्ता के समुद्र में डूबने उतराने; और मुँहपर रूमाल दिए खांसते खूंसते इधर उधर ताकने! दो चार बूँद पानी भी उनके मुखमण्डल पर झलकने लगा। जो मुख कमल पहले उत्साहसूर्य्य की किरणों से खिल उठा था, अब ग्लानि और सङ्कोच का पाला पड़ने से मुरझाने लगा। उनकी ऐसी दशा देख मेरा हृदय दया से उमड़ आया। उस समय मैं बिना बुलाये उनकी सहायता के लिए जा खड़ा हुआ; और उनके कानों में चुपके से मैंने कहा "महाशय, कुछ परवा नहीं, आपकी मदद के लिए मैं हूं। आपके जी में जो आवे आरम्भ कीजिए; फिर तो मैं सब कुछ निबाह लूंगा"। मेरे ढाढ़स बँधाने पर बेचारे वक्ता जीके जी में-जी आया। उनका मन फिर ज्यों का त्यों हराभरा हो उठा। थोड़ी देर के लिए जो उनके मुखड़े के आकाशमण्डल में चिन्ताचिन्ह का बादल देख पड़ा था, सो मेरे ढाढ़स के झकोरे से एकबारगी फट गया; और उत्साह का सूर्य्य फिर निकल आया। अब लगे वे यों वक्तृता झाड़ने—"महाशयगण, मनु इत्यादि धर्म्मशास्त्रकार, व्यास इत्यादि पुराणकार, कपिल इत्यादि दर्शनकारों ने कर्म्मवाद पुनर्जन्मवाद इत्यादि जिन जिन दार्शनिक

तत्व-रत्नों को भारत के भाण्डार में भरा है, उन्हें देख कर मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्य पण्डित लोग बड़े अचम्भे में आकर चुप हो जाते हैं। ... ... इत्यादि, इत्यादि"।

यहां इतना कहने की ज़रूरत नहीं कि वक्ता महाशय धर्म्मशास्त्रकारों में केवल मनु, पुराणकारों में केवल व्यास, दर्शनकारों में केवल कपिल का नाम ही भर जानते हैं; और उन्होंने कर्म्मवाद, पुनर्जन्मवाद का केवल नामही भर सुनलिया है। पर देखिए मैंने उनको दरिद्रता दूर कर उन्हें ऊपर से कैसा पहरावा पहनाया, कि भीतर के फटे पुराने और मैले चीथड़े को किसीने नहीं देखा।

और सुनिए—किसी समालोचक महाशय का किसी ग्रन्थकार के साथ बहुत दिनों से मन-मुटाव चला आता है। जब ग्रन्थकार को कोई पुस्तक समालोचना के लिए समालोचक साहब के आगे आई, तब वे बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि यह दांव तो वह बहुत दिनों से ढूंढ़ रहे थे। पुस्तक को बहुत कुछ ध्यान देकर, उलट कर, उन्होंने देखा। कहीं किसी प्रकार का विशेष दोष पुस्तक में उन्हें न मिला। दो एक सामान्य छापे की भूलें निकलीं। पर इससे तो सर्वसाधारण को तृप्ति नहीं होती। ऐसी दशा में बेचारे समालोचक महाशय के मन में मैं याद आगया। वे झटपट मेरी शरण आये। फिर क्या है? पौ बारह! उन्होंने उस पुस्तक की यों समालोचना कर डाली—"पुस्तक में कितने दोष हैं, उन सभों को दिखाकर, हम ग्रन्थकार को अयोग्यता का परिचय देना, तथा अपने पत्र का स्थान भरना, और पाठकों का समय खोना, नहीं चाहते। पर दो एक सामान्य दोषमात्र हम दिखा देते हैं जैसे ... ... इत्यादि, इत्यादि।"

पाठक! देखा! समालोचक साहब का इस समय मैंने कितना बड़ा काम किया। यदि यह अवसर उनके हाथ से निकल जाता तो वे अपने मन-मुटाव का पलटा क्यों कर लेते? यह तो हुई बुरी समालोचना की बात। यदि भली समालोचना करने का काम पड़े, तो मेरे ही सहारे वे बुरी पुस्तकों को भी ऐसी समालोचना कर डालते हैं, कि वह पुस्तक सर्वसाधारण को आंखों में भली भासने लगती है और उसकी माँग चारों ओर से आने लगती है।

कहां तक कहूं। मैं मूर्ख को पण्डित बनाता हूं। जिसे युक्ति नहीं सूझती उसे युक्ति सुझाता हूं। लेखक को यदि भाव प्रकाश करने को भाषा नहीं जुटती तो भाषा जुटाता हूं। कवि को जब उपमा नहीं मिलती, उपमा बताता हूं। सच पूछिए तो मेरे पहुंचते ही अधूरा विषय भी पूरा हो जाता है। बस, क्या इतने से मेरी महिमा प्रगट नहीं होती?

यशोदानन्दन अखौरी।

कीड़े मकोड़े।

यह संसार अपार है। न जानै इसमें क्या क्या है, किसी को कुछ पता नहीं। मनुष्य थोड़े पदार्थों को देख सकता है; और जिनको देख भी सकता है उनको भली प्रकार जान नहीं सकता। यदि एक चींटी को ध्यान से देखिए तो उसमें भी सर्वशक्तिमान् भगवान् की असीम माया देख पड़ेगी; और यह बेचारी मनुष्य की तनिक सी बुद्धि, जो अहम्भाव से फूली फूली फिरती है, ठगी सी रह जायगी। सृष्टि का तुच्छ से तुच्छ पदार्थ लेकर यदि मनुष्य बैठे कि उसका तत्व पूर्ण रूप से जान लूं, तो अहर्निश परिश्रम करके, अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में भी, जान लेना असम्भव है। ये छोटे छोटे कीड़े मकोड़े, जिनको हम तुच्छ दृष्टि से देखा करते हैं, उस कर्त्ता की महती महिमा के अपार भण्डार हैं। यदि हम एक को लेकर उसकी आंतरिक रचना तथा उसके गुण, कर्म, स्वभाव का अवलोकन करते हैं तो आश्चर्य्य से स्थगित रह जाते हैं; और मनुष्य की हीनता, तथा उसके बुद्धि-वैभव की न्यूनता स्पष्ट प्रगट हो जाती है।

Microscope अर्थात् सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र के द्वारा ऐसे ऐसे अद्भुत गुप्त रहस्य प्रकट हुए हैं जिन्हें देख कर बुद्धि चकित होती है। यह यन्त्र एक डच पदार्थविज्ञानी (Naturalist) के परिश्रमकाफल है; और, अब, पहले की अपेक्षा, इस में बहुत कुछ संशोधन किया गया है। लण्डन के विज्ञानियों ने अब एक सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र ऐसा बनाया है, जिसमें पदार्थ ५,६०,००,००० गुना बड़ा देख पड़ता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ, जिसका मन ही मनन कर सकता है, वह भी इससे देख पड़ सकता है। एक Millimetre अर्थात् १/२५ इञ्च का दस हज़ारवाँ भाग इससे भली प्रकार देखा जा सकता है। बहुतों को यह सुन कर आश्चर्य होगा और विश्वास नहीं आवैगा; परन्तु आजकल के पदार्थविज्ञान का यह एक छोटा सा चमत्कार है। इससे भी और बढ़ चढ़ कर आश्चर्य्यजनक यन्त्र बनाये गये हैं।

इन्हीं सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से देखने से छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों का ठीक ठीक हाल जान पड़ता है। आजकल पदार्थविज्ञान में बड़ी उन्नति हुई है; और गुप्त माया का इन्द्रजाल सा हमारे नेत्रों के आगे खुल गया है। यह सब उन्हीं बड़े बड़े महात्मा विज्ञानियों के अनवरत परिश्रम का फल है, जिन्होंने पदार्थ-विज्ञान की खोज में अपना जीवन-सर्वस्व निछावर कर, ऐसे ऐसे रहस्यों का पता लगाया और मनुष्यजाति की गरिमा बढ़ाई। ऐसे ही पुरुष धन्य हैं।

Lyonet लाइओनेट नामी एक विज्ञानी ने लगभग अपना सम्पूर्ण जीवनकाल एक willow (एक प्रकार का बेंत) के कीड़े के तत्वान्वेषण में व्यतीत किया; और विद्यावीरोचित धैर्य्य धारण कर मानुषी प्रज्ञा का एक अद्भुत कीर्तिस्तम्भ खड़ा कर दिया। Geodart जीओडार्ट नामक एक डच चित्रकार ने अपने जीवनकाल के बीस वर्ष एक कीड़े के रूप परिवर्तन देखने में ख़र्च कर दिये! वह कहता था कि "तितली को जन्म लेते हुए देखकर मुझे जितना आनन्द मिलता है उतना अन्य किसी पदार्थ से नहीं। यह छोटा सा जीव परमात्मा के सामर्थ्य और महिमा का उत्कृष्ट उदाहरण है"।

नर-शरीर की रचना बहुत से जन्तुओं के शरीर की अपेक्षा स्थूल तथा भद्दी होती है; परन्तु बुद्धि उसमें एक ऐसी वस्तु है जो सबसे श्रेष्ठ है; अन्य जन्तु इससे वञ्चित हैं। इस बुद्धि के कारण, केवल मनुष्य ही उस सर्वोपरि जगदीश्वर के चरणकमल तक पहुंच सकता है; और देवताओं की पदवी को प्राप्त हो सकता है जो अन्य जीवों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। आश्चर्य्य का विषय है कि, संसार में, बहुधा, सुकुमारता और बल की अधिकता एक ही स्थान में पाई जाती है। छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों को देखने से, हमें इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। यही कारण है कि, विज्ञानी लोग छोटे से छोटे जीव को भी तुच्छ दृष्टि से नहीं देखते। एक छोटी सी तितली, एक छोटी सी मक्खी, मनुष्यजाति के बड़े से बड़े परिश्रम को निष्फल कर सकती है। मनुष्य सैकड़ों प्रयत्न करता है; पर एक छोटा सा जीव क्षण भर में खेत के खेत खा डालता है; और सैकड़ों कोस तक अकाल फैला देता है। यही साधारण मक्खियां, डांस इत्यादि, जिनको हम उँगली से मल डाला करते हैं, मनुष्य-जाति के बड़े भयानक वैरी हैं। अनेक देशों में जहां इन जीवों की बड़ी अधिकता होती है, मनुष्य को उन से बचने का प्रायः कोई उपाय नहीं रहता। और सिवा इसके कि, एक आपत्ति से बचने के लिए मनुष्य अपनेको दूसरी आपत्ति में डाले, और वह कुछ नहीं कर सकता।

सेनीगल देश में वहां के वासी डांसों की ऋतु में दिन रात घने धुंयें ही में बैठे रहते हैं। यद्यपि उनको इससे भी बड़ा क्लेश होता है, तथापि वे क्या करें? प्राण रखने का और कोई उपाय नहीं। वे लोग घरों में, तथा बाहर वृक्षों में, झूले डालते हैं; और उन पर हरी हरी शाखाओं तथा पत्तियों की टट्टियांसी बांध कर रखते हैं। उन्हीं पर वे रहते हैं और नीचे गीली गीली लकड़ी के लट्ठे सुलगाते हैं

जिनसे बड़ा धुंवा उठता है। इसी प्रकार उनका दिन रात महा कष्ट से कटता है। मित्रों से मिला भेंटी तथा और सांसारिक काम इसी धुवा-धार में होते हैं। रात को चारों ओर धुंवा करके और नीचे भी आग सुलगा कर वे शयन करते हैं।

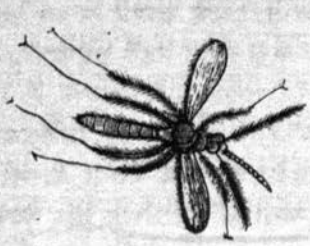

डांस

अनेक असभ्य जातियां इस शत्रु से बचने के लिए अपने शरीर भर में एक प्रकारकी बड़ी दुर्गन्धयुक्त चर्बी लगा लेते हैं। उनके लिये अन्य कोई उपाय नहीं। लैप-लैण्ड के वासी डांसों से बचनेके लिए रात दिन अपनी झोपड़ियों को धुंयें में बन्द किये हुए अँधेरे में छिपे बैठे रहते हैं। मापर्टियस (Maupertius) नामक ज्योतिषी और उसके साथी जब लैपलैण्ड में पर्यटन कर रहे थे, तब उनको इन डांसों ने इतना सताया, कि उनको अन्त में अपना मुख तारकोल से रँगना पड़ा!

डाँस कई प्रकार के होते हैं; उसका जातीय नाम क्यूलेक्स (Culex) है; परन्तु सब प्रकारके डांसों की बनावट तथा स्वभाव लगभग समान ही होते हैं।

डांस की स्पर्शेन्द्रिय किम्वा मोछ बड़ेही मज़े-दार होते हैं। उनके दोनों तरफ़ आधी दूर तक बालों के गुच्छे होते हैं; और ऊपर का भाग पतली कील के समान नुकीला होता है। उस पर सूक्ष्म केश होते हैं। डांस की आंखें गेंद के समान गोल और बड़ी होती हैं। उसका मस्तक आँखों ही से प्रायः व्याप्त रहता है। डांस की आँखों का रँग कुछ हरापन लिये होता है। यहां पर जो चित्र दिया गया है उसमें जो दो गोले से

स्पर्शेन्द्रिय

हैं वे डांस की आँखें हैं; दोनों ओर दो मोछ (स्पर्शेन्द्रिय) हैं; और बीच में उस का शस्त्र-कोश—शस्त्रा गार किम्वा हथियार रखने का बक्स है। यह बर्छी के आकार का है।

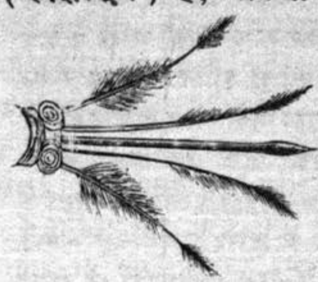

आँखें, मोछ और भाला

डांस का शस्त्र, जिससे वह प्राणियों पर आक्रमण करता है एक लम्बा भाला है। अत्यन्त तीक्ष्ण फांस के समान वह उसको मुँह से निकाले रहता है। उसको खुली आँखों से देखिए तो वह अवश्य महीन और सरल जान पड़ता है; परन्तु सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र से उसमें बड़ा रहस्य देख पड़ता है।

नोचे का चित्र देखिए।

शस्त्र-कोष।

शस्त्र-समुदाय।

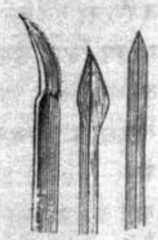

शस्त्रों के प्रकार।

डांस का शस्त्र-कोश बर्छी के आकार का (तल-वार का सा मियान) है। उसके भीतर ६ शस्त्र रहते हैं। दो चाकू के फल के समान होते हैं; जिनमें नश्तर की सी धार होती है। दो में आरी के से तीक्ष्ण दाँत होते हैं, जो ऊपर की ओर रहते हैं। एक आकर्षक नली होती है और बीच में एक अत्यन्त तीक्ष्ण सूई होती है। ये दोनों अन्तिम शस्त्र चिपटे होते हैं। जब डांस काटना चाहता है, तब वह पिछले दोनों शस्त्र शस्त्रकोश के बाहर ले आता है और उनको खाल पर रखकर मांस में घुसेड़ देता है। ये सूइयां लगभग १/२ इञ्च लम्बी होती हैं,

ग्रैार जब सब घुस जाती हैं तब डांस के नश्तर दोनों ग्रोर निकल कर चलने लगते हैं ग्रैार मांस के काटने लगते हैं। जब रुधिरवाही नसों में छेद हो जाता है, तब डांस की शुंडा से एक प्रकार का बड़ा संतापक विस्मय रस निकालता है ग्रैार रुधिर में मिल जाता है। इसका फल यह होता है कि गाढ़ा रुधिर पतला होकर, इस योग्य हो जाता है कि डांस की सूक्ष्मनली के द्वारा ऊपर चढ़ सके। इसके उपरान्त, जैसे हम लोग पिचकारी से होली में रङ्ग खींचते हैं, तैसे ही वह रुधिर खींचने लगता है। इस समय यदि उसे कोई उड़ा न दे तो वह पेटभर रुधिर पीकर स्वयं उड़ जाता है, ग्रैार खाल पर उसी विषरस ग्रैार घाव के कारण ददरा पड़ जाता है, जिसमें बड़ी खुजली होती है।

ग्राफ़्रिका की एक छोटी सी मक्खी ग्रैार भी भयङ्कर होती है। वह मनुष्य से पद पर पद संग्राम करती है; ग्रैार कहती है कि, ख़बरदार हमारे राज्य में पैर न रखना। जिस स्थान में यह मक्खी होती है वहां मनुष्य बिना इसको एक एक करके मार डाले, न तो खेती कर सकता है ग्रैार न बाहर इधर उधर निकल ही सकता है। वहां के निवासी इस मक्खी को (Tsetse) सीसी कहते हैं। यह हमारे ही यहां की मक्खी के सदृश होती है। ग्रैार देखने से वैसी ही ग्रहिंस्र तथा भोली भाली जान पड़ती है। परन्तु इसके डङ्क में एक प्रकार का ऐसा कराल विष होता है, जो विषधर से विषधर सर्प के गरल से भी बढ़कर है। यदि बली से बली बैल के ये दोही चार मक्खियां काट खायँ तो वह तुरन्त मर जाय। इस पर बड़े ग्राश्चर्य्य की बात यह है कि इसका डङ्क इतना सूक्ष्म होता है, कि यदि उसको बारीक से बारीक़ तराज़ू में तोलैं तौ भी उसका परिमाण ज्ञात नहीं होता। न जानैं, क्या कारण है कि इसका विष कुछ जीवों पर तो ग्रपना प्रभाव दिखा सकता है ग्रैार कुछ पर नहीं। गाय बैलों तथा ग्रन्य ग्राम्य पशुग्रों पर इसका विशेष ग्रधिकार है। परन्तु गधा ग्रैार बकरी पर इसका कुछ भी ग्रसर नहीं होता। मनुष्य तथा ग्रन्य जीवों पर भी इसके काटने का कोई भयानक परिणाम नहीं होता। एक ग्रैार कौतुक सुनिए। यह कीड़ा केवल युवा पशु को मार सकता है; छोटे बच्चों का यह केवल रुधिर पी लेता है; ग्रैार कुछ नहीं कर सकता। बैल तो इसके काटने से मर जाता है। परन्तु बछरे को कुछ हानि नहीं पहुँचती। डाक्टर लिविङ्गस्टोन (Livingsotne) कहते हैं कि "जब मैं भ्रमण कर रहा था, तब ये मक्खियां बहुधा मेरे साथी लड़कों को काट खाया करतीं थीं; परन्तु थोड़ी खुजली के ग्रतिरिक्त ग्रैार कोई विशेष बाधा नहीं होती थी। वे इसका कुछ ख़याल नहीं करते थे। परन्तु इसी मक्खी ने मेरे साथ के ४३ बलीवर्दों को, बड़ी ताक रखने पर भी, मार डाला"।

जेम्बसी (Zambasi) नदी के दोनों तटों पर यह मक्खी बहुतायत से पाई जाती है; ग्रैार तट को छोड़कर प्रायः बहुत दूर नहीं जाती। ज्यों हीं पशु इसके निकट से निकलने लगते हैं, त्योंहीं यह सहसा बाण के समान दौड़कर उनपर ग्राक्रमण करती है; ग्रैार, फिर, उनका बचना कठिन हो जाता है। डाक्टर लिविङ्गस्टोन कहते हैं कि "मैं जब इस देश में था तब ये मक्खियां कभी कभी मेरे ग्रैार मेरे साथियों के सिर के ग्रास पास मधुमक्खियों की तरह झुण्ड बांधकर उड़ा करतीं थीं ग्रैार कभी कभी शरीर भर में काट खातीं थीं; पर कोई विशेष क्लेश नहीं होता था। ग्रैार, साथ में जो गधे थे उनको यदि वे काटतीं थीं तो उन्हें कुछ भी जान नहीं पड़ता था"। जिस देश में ये होती हैं वहां बैल, घोड़े, भेड़ तथा कुत्ते बचने ही नहीं पाते। ग्रतः वहां के वासी केवल बकरी ग्रैार गधे ही से काम चलाते हैं। जिन पशुग्रों को ये काटती हैं वे भली प्रकार ग्रपने घातक को जानते हैं; ग्रैार जैसे ही इसकी भनभनाहट उनके कान तक पहुँचती है तैसे ही भयभीत होकर वे ग्रपना प्राण लेकर इधर उधर भागने लगते हैं। इसके कारण केवल कृषि ही को हानि नहीं पहुँचती; मनुष्य भी बहुत

दूर तक देश के भीतर नहीं जा सकता। विशेष कर यात्रियों के। इससे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है, और उनको बैल, घोड़े इत्यादि ले चलना कठिन हो जाता है। इसके वास्तह वे यह उपाय करते हैं कि रात में जब यह मक्खी बसेरे चली जाती है, तब चुपके से पशुओं को वे निकाल ले जाते हैं, और प्रभात होते होते उनको किसी निर्भय स्थान पर पहुंचा देते हैं।

यही घरेलू मक्खी, जो हम लोगों के यहां बड़ी भोली भाली तथा निरपराध जान पड़ती है, गर्म देश के यात्रियों को बड़ी ही दुःखदायिनी होती है। वहां बाघ और रीछ से मनुष्य इतना नहीं डरते जितना इस मक्खी से डरते हैं। डाकृर लिविङ्गस्टोन कहते हैं कि "वहां इससे बचने का केवल यही उपाय है, कि दासों का एक समूह सदैव हमारे चारों ओर चमर हिलाया करे। उत्तरीय मिसर के ग्रामों में मैंने बहुधा देखा है कि माता के गोद में बच्चा है और बच्चे के मुँह पर मक्खियों का ऐसा घना झुण्ड है कि मानों काले कम्मल का रेंगता हुआ टुकड़ा पड़ा हो। सबकी सब मक्खियां अपनी अत्यन्त सूक्ष्म शुण्डा से अपने कार्य्य में ऐसी व्यग्र हैं, कि उनको तन मन की कुछ भी सुधि नहीं है। मैंने जो कुछ कहा, इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। यथार्थ में उन बच्चों के दोनों नेत्र छोड़कर मुँह पर कोई ऐसा स्थान न था जहां मक्खियां ही मक्खियां न हों। कई वर्ष हुए हमारे देश के एक बड़े भारी डाकृर (Julescloquet) जूलसक्लाकेट ने एक शराबी का वृत्तान्त छापा था, कि वह पेरिस की एक गली में मदिरा से उन्मत्त हो, पड़कर, सो रहा। लोग उसे मेरे चिकित्सालय में उठा लाये। मैंने देखा कि एक विशेष प्रकार की अनेक मक्खियां (blow-flies) उसके नाक और कान में घुस गई थीं और वहां से छिद्र कर के मस्तक में प्रवेश कर गई थीं। वहां का मांस खाकर तथा हड्डी में छेद करके वे बाहरी त्वचा पर्य्यन्त आगई थीं। बड़े प्रयत्न करने पर भी उसके घाव अच्छे न हुए; उनमें मवाद पड़ गया और वह मनुष्य मर गया"।

ये छोटे छोटे कीड़े मनुष्य के सर्व नाश का बहुधा कारण होजाते हैं। रुधिर पान करनेवाले दो पक्षवाले पतंगे (Diptera), गोमक्षिका, गृहमक्षिका, तथा डांस इत्यादि दुर्गंधयुक्त गलित मुर्दों पर बैठते हैं। तदनन्तर उसी विषयुक्त शुंडा से मनुष्य को काटते हैं। इससे बहुधा विशूचिका इत्यादि के कीड़े शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे कीड़ों के काटने से प्रायः फोड़े निकल आते हैं जो प्राण ही लेकर जाते हैं। लण्डन के अस्पतालों में बहुधा ऐसे दृश्य देखे जाते हैं। हमारे देश में, प्रायः मक्खी के ऐसे भयानक काम कम देखने में आते हैं; पर कभी कभी इसके संहार के दो एक उदाहरण दृष्टिगोचर हो जाया करते हैं। यहां भी यह कभी कभी मदिरामत्त मनुष्यों को घोर निद्रा में निस्तब्ध पाकर मस्तक-छेदन-पूर्वक उनको महानिद्रा में सुला देती है।

कीड़ों का विशेष प्रभाव खेतों तथा जङ्गलों ही में देख पड़ता है। रैट्ज़बर्ग (Ratzberg) नामक विज्ञानी कहता है कि केवल देवदारु (pine tree) पर चार सौ प्रकार के कीड़े रहते हैं। उनमें से अधिकांश उसी वृक्षको हानि पहुँचाते हैं। चार्ल्स मुलर (Charles Muller) ने लिखा है कि सिन्दूर के वृक्ष (oak tree) पर लग भग दो सौ प्रकार के कीड़े रहते हैं।

योरप के किसी किसी स्थान में एक प्रकार की पीतवर्ण मक्खी होती है जिसके ऊपर श्याम वर्ण की धारियां होती हैं। इसको क्लोरैप्स लाइनीटा (chloraps lineata) कहते हैं। किसानों को यह बहुत हानि पहुँचाती है। स्वीडन में केवल यही मक्खी प्रतिवर्ष, देशभर के सम्पूर्ण कृषि का पञ्चांश, लगभग २८ लाख मन, जौ खा जाती है! मध्य फ़्रांस में यह मक्खी कभी कभी खेतों का आधा धान्य खा डालती है। बहुतों का तो यह मत है कि यदि इसकी उत्पत्ति अन्य कारणों से न रुक जाय तो कुछ ही समय में यह जौ का बीज ही पृथ्वी से विनाश कर दे। परन्तु, धन्य है वह परमात्मा जिसने

इसका संहारक एक दूसरा कीड़ा अलीसिया आलोवियरी (alysia alivieri) नामक पैदा किया। वह इसके अण्डों में छेद करके उनके खोखलों में अपने अण्डे रख देता है।

एक और प्रकार की मक्खी जित वृक्ष अर्थात् आलिव (Olive) पर होती है। वह प्रतिवर्ष कम से कम उसके तीस लाख फल खा डालती है। ऐसी ही एक प्रकार की तितली अंगूर के वृक्ष पर होती है जो अंगूर को खेती का बहुधा सर्वनाश कर देती है। इस तितली के दूर करने का उपाय पदार्थ-विज्ञान अभी तक नहीं जान सका है।

कीड़ों के झुण्डके झुण्ड जब किसी वृक्ष पर आक्रमण करते हैं तब वह वृक्ष मर जाता है, अथवा यदि जीवित भी बचता है तो अत्यन्त विकृताकार हो जाता है। एक अत्यन्त सूक्ष्म कीड़ा होता है जिसको उली येफिस् (Wooly aphis) कहते हैं। जब वह वृक्ष की शाखा पर होता है तब यदि उसके शरीर पर एक रायेंदार गद्दी न हो तो वह साधारण दृष्टि से न देख पड़े। उसके डङ्क मार देने से सेवके वृक्ष (apple tree) में बहुत से फोड़े निकल आते हैं जिनके कारण वृक्ष बहुधा मर जाता है। कीड़ों के डङ्क मार देने से वृक्षों में व्रण हो जाते हैं। उनमें गोलाकार मोटी मोटी गुमरियां निकल आती हैं, जिन पर घनी घनी डालियां निकलने लगती हैं। देवदार के वृक्षों पर ये बहुधा हुआ करती हैं। योरप में इनको Witche's brooms अर्थात् "चुड़ैल की झाड़" कहते हैं। इस देश में ये बांदा कहलाती हैं। कहीं कहीं के असभ्य जङ्गली लोगों का यह विश्वास है कि इस विचित्र झाड़ी में बिजुली के आकर्षण करने की शक्ति होती है। अतः वे इसको छूने से डरते हैं कि ऐसा न हो कि हम पर वज्रपात हो जाय!

अत्यन्त सूक्ष्म जीवों के विषय में सबसे विलक्षण कौतुक यह है कि परमात्मा ने उनके अङ्गों में ऐसी अद्भुत संचालन शक्ति दी है जिसका कुछ ठौर ठिकाना नहीं। यदि हम अपनी भुजा ऊपर को उठावें और तुरन्त उसे फिर नीचे ले आवें, तो चाहें जितनी शीघ्रता करें, एक सेकण्ड से कुछ अधिक ही समय लग जायगा। परन्तु विद्वद्वर हर्षल (Hershal) के मतानुसार बहुत से कीड़े इतने ही समय में कई सौ बार अपने पक्षों को हिला सकते हैं। एम काग्नेयर्ड लैटूर (M. Cagnaird Latour) ने परीक्षा की है कि डांस एक सेकण्ड में पांच सौ बार अपने पंखों को स्फुरण कर सकता है। निकलसन (Nicholson) साहब इससे भी बढ़कर आश्चर्य्य की बात लिखते हैं। वे कहते हैं कि, यही साधारण मक्खी एक सेकण्ड में छः सौ बार पक्ष-स्फुरण करती है; क्योंकि यह इतने ही समय में छः फीट उड़ जाती है। यह तो उसकी साधारण गति का हिसाब है; परन्तु जब वह भय या अन्य किसी कारण से भागती है, तब ऊपर दी हुई सङ्ख्या छः गुना अधिक हो जाती है। अर्थात् एक सेकण्ड, अथवा उतने समय में कि जितने में हम अपनी भुजा को एक बार नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे ले आ सकते हैं, यह मक्खी अपने पङ्खों को तीन हज़ार छः सौ बार विस्फुरण करती है!!! ऐसी बातों को सुनकर मन चकित होता है; परन्तु यह सब सच है। इसी विलक्षण वेग के कारण ये जीव ऐसी सुगमता से उड़ सकते हैं। ब्लैङ्कार्ड (M. Blanchard) साहब कहते हैं कि मैंने पूरे वेग से जाती हुई डाकगाड़ी पर बैठे खिड़की से देखा है कि गाड़ी के साथ मच्छड़ बड़े ही सुख पूर्वक उड़ते चले आ रहे हैं। गाड़ी की मक्खियां, वायु विपरीत होने पर भी, आगे पीछे, नीचे ऊपर, अत्यन्त सुगमता से चक्कर काटती रहती हैं; और घण्टों अपनी क्रीड़ा में मग्न रहती हैं। गाड़ी के वेग का उन्हें कुछ ध्यान नहीं होता। वे मानों यह दिखलाती हैं कि मनुष्य, जिसको अपने बुद्धिबल का इतना अहङ्कार है, उनके छोटे छोटे सुकुमार पङ्खों की समता कदापि नहीं कर सकता। ये सब बातें जान लेने पर तितलियों की चञ्चलता पर, जब वे फूलों का मधु चुराती हैं, हम को विशेष आश्चर्य्य नहीं होता। बाण के सदृश इस

पुष्प से उड़कर वे उस पुष्प पर पहुँचती हैं, ग्रैार कोमल सुमनदल पर निस्तब्ध बैठ कर अपनी लम्बी लम्बी रसना से अमृतोपम मधुर मधु का आस्वादन करने लगती हैं।

तितली के पङ्ख बड़े ही विचित्र होते हैं। उनके नाना प्रकार के अनूठे रङ्ग तो बड़े ही मनोहारी होते हैं। चाहे जितनी सावधानी से तितली का पङ्ख पकड़िए, छोड़ने पर, कुछ न कुछ रेणु हांथों में लग ही जावेगी। इसी कारण, वे चित्र विचित्र मनोहर रङ्ग दिखलाई देते हैं। साधारण देखने से तो यह रेणुका सी जान पड़ती है, परन्तु सूक्ष्म-दर्शकयन्त्र द्वारा इसका एक एक कण लम्बा लम्बा पत्र सा देख पड़ता है। यह पत्र अत्यन्त मृदुल ग्रैार रहस्यमय रचना से युक्त होता है। इसी में ये मायामय रङ्ग होते हैं। इनके एक प्रान्त में गहरे गहरे दाँत से होते हैं, ग्रैार दूसरे प्रान्त में एक छोटा सा वृत्त होता है जिसके सहारे वे पङ्ख पर लगे होते हैं। पङ्खों को यदि थोड़ी शक्तिवाले सूक्ष्म-दर्शकयन्त्र से देखिए तो प्रकट होगा, कि उनके ऊपर की सजावट भी बड़ी ही उत्तम होती है। जैसे छत के ऊपर खपरैल छाई जाती है उसी प्रकार वे भी अत्यन्त सावधानी के साथ यथाक्रम एकही सी रचना से ऊपर नोचे पंक्तियों में सजे होते हैं। एक भी पत्र न बड़ा होता है न छोटा। पङ्खों में जो रङ्गभेद होता है, उसके कारण ऐसा जान पड़ता है, मानों विचित्र पच्चीकारी की एक परम रम्य पट्टिका उनपर खचित हो।

हम अपने शरीर का अङ्ग सञ्चालन दीर्घाकार मांसल पुट्ठों के द्वारा, जो शरीर में जमे रहते हैं, किया करते हैं। इनके विषय में कीड़े मकोड़े, संख्या तथा बल, दोनों में, हमसे अधिक हैं। अनाटमिस्ट्स (Anatomists) अर्थात् शरीरशास्त्रज्ञ पण्डितों के मतानुसार मानव शरीर में ३७० पुट्ठे होते हैं; परन्तु पण्डितवर लाईनैट (Lyonet) ने धैर्यपूर्वक अवलोकन द्वारा एक कीड़े में ४,००० से भी अधिक पुट्ठे (muscles) निश्चित किये हैं !!! इन पुट्ठों में बल भी बहुत अद्भुत होता है। सामान्य बल वाला मनुष्य चवालीस पाउण्ड अर्थात् बाईस सेर का बोझ बिना परिश्रम भूमि पर से नहीं उठा सकता; क्योंकि वह स्वयं तैाल में १५० से २०० पैाण्ड (७५ सेर से १०० सेर) के भीतर ही भीतर होता है। इससे हमें यह विदित हुआ कि मनुष्य अपने शरीर का लगभग तृतीयांश भी सुकरता से नहीं उठा सकता। अब, देखिये, कि यदि इसी हिसाब से एक छोटे से कीड़े खेहरिया के बल का परिचय लें तो आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहता। यह जीव तैाल में केवल ६२ ग्रेन्स (लगभग ५ माशे) का होता है; परन्तु अपने दो बड़े बड़े पञ्जों से ३ पाउण्ड ५ आउंस (लगभग पैाने दो सेर) का भार हटा देता है। अर्थात् उसमें अपने शरीर से तीन सैा पचहत्तर गुना अधिक बोझ उठालेने का सामर्थ्य होता है !!!

साधारण तैार पर भी देखने से हमको कीड़ों की आश्चर्यजनक शक्ति का परिचय मिल सकता है। कविवर सर वाल्टर स्काट ने लिखा है कि गार्डन स्नेल (बाग़ का घोंघा) ने चिराग़दान के नीचे बन्द कर दिये जाने पर, वहां से निकल भगने के प्रयत्न में, उसको अपने स्थान से हटा दिया। यहां ऐसी ही बात हुई कि जैसे न्यूगेट के जेल का कोई क़ैदी स्वन्त्रता पाने की अभिलाषा से चारों ग्रोर की ऊँची ऊँची दीवारें हिला डाले!

बहुत से कीड़ों का शरीर अत्यन्त ही कोमल ग्रैार सूक्ष्म होता है, तथापि उनका बल, ग्रैार सब बातों को देखते, बहुत ही अद्भुत होता है। उदाहरण के लिए मच्छड़ ही को लीजिए। एम डी फानवीयल (M.de. Fonvielle) ने अपने (Invisible world) "अलख संसार" नामक विलक्षण ग्रन्थ में लिखा है कि वह पृथ्वी से अपने शरीर की उँचाई से दो सैा गुना अधिक ऊँचा कूद सकता है। मनुष्य अपने विषय में, ऐसी डींग चाहे हँसी में भलेही मारै,–परन्तु, यथार्थ में, वह कभी ऐसा नहीं कर सकता। मनुष्य यदि मच्छड़ का सा अद्भुत कुदक्कड़ हो तो जेलख़ानें

को दीवारें जब तक ५०० गज़ ऊँची न बनाई जायँ तब तक उसका उसके भीतर क़ैद रखना असम्भव हो जाय!

श्रीनारायण मिश्र।

जापान और युद्ध।

इस समय, पृथ्वीतल के सब देशों के प्रायः सभी मनुष्यों का चित्त जापान और उस के विलक्षण देशवासियों की ओर आकर्षित हो रहा है। जापान उस प्रबल रूस को ललकार कर युद्ध ठान बैठा है, जिससे योरोप के प्रायः सब नरेश भय खाते हैं और यथाशक्य उससे दूर रहने का यत्न करते हैं। यह पहला समय है, कि एक एशिया नरेश ने एक योरोपीय प्रबलशक्ति को छेड़ा है। उससे परास्त होने पर जो दुर्दशा होगी, उसके कहने का कुछ प्रयोजन ही नहीं; किन्तु उस पर विजय प्राप्त करने पर भी, जापान को विशेष दुर्दशा की संभावना है।

जापान प्रशान्त महासागर में एशिया के पूर्वीय छोर पर, एक द्वीपसमूह है। उसमें न्यूनाधिक ३८०० द्वीप हैं। जिनमें से सबसे बड़ा हाण्डू या न्यूफान है। उससे छोटे, दक्षिणीय किनारे पर. क्यूसिन, होकाइडो और सिकाकू; और उत्तरीय किनारे पर यज़ो नामक द्वीप हैं। जापानी भाषा में इस मुल्क को उदयाचल देश (The Land of the Rising Sun) कहते हैं। जापान के फ़ौजी और जहाज़ी झण्डे पर भी प्रातःकाल के सूर्य्य-बिम्ब का चित्र रहता है।

जापान का क्षेत्रफल १,४७,६५५ वर्ग मील है। आबादी ४,५८,६२,००० है। इसके निवासी प्रायः शिंतोई और बौद्धधर्म्म के हैं। इसकी राजधानी टोकियो है। इसको दक्षिणोत्तर लम्बाई दस मील, पूर्व-पश्चिम चौड़ाई आठ मील; और आबादी डेढ़ लाख है। भूकम्प से इस शहर को बहुत हानि पहुंची है। १८५५ में जो धरणीकम्प हुआ था उसे १,१०,००० आदमियों के प्राण गये थे। यह बड़ा सुन्दर शहर है। इसके बीच में एक नदी बहती है।

वर्त्तमान जापान-नरेश का नाम मुत्सहितो है। इनकी उमर, इस समय, प्रायः ५२ वर्ष की है। रूस-सम्राट (ज़ार) से उमर में ये १६ वर्ष बड़े हैं। १३ फ़रवरी सन् १८६७ ई० को ये सिंहासनारूढ़ हुए। उस समय ये १५ वर्ष के बालक थे। इनका राज्य एशिया के और देशों की तरह बड़े बड़े तअ़ल्लुक़ेदारों और रईसों के दर्मियान बँटा था। ये रईस और तअ़ल्लुक़ेदार नाम के लिए तो जापान नरेश के आधीन थे; किन्तु वस्तुतः सब स्वाधीन थे, और अपनी अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते थे। मिकाडो* मुत्सहितो साधारण सम्राट नहीं हैं। यद्यपि वे उस समय बालक थे, तथापि स्वाभाविक वीर थे। आरम्भ ही से इन्होंने सारे देश को एक करके सब प्रकार से उस पर अपना अधिकार जमाने की प्रतिज्ञा कर ली थी, अथच इनके सिंहासनारूढ़ होते ही शोगन, अर्थात् जापानी रईसों ने, देश में उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया, और सन् १८६८ ई० में देश के एक किनारे से दूसरे तक बलवा मच गया। इस उपद्रव में सर्वसाधारण प्रजा ने, जो शोगन लोगों के उपद्रव और लूट मार से पीड़ित थी, जापान नरेश का साथ दिया। सन् १८६८ ई० के अंत तक इस वीर-शिरोमणि राजा ने सब उपद्रवियों को शान्त करके देश में फिर शान्तिस्थापन कर दी। तब से जापान पूरे तौर पर एक हो गया। एक मुत्सहितो की आज्ञा सब द्वीपों में मानी जाने लगी। शोगन लोगों का साधारण लोगों पर दबाव जाता रहा। वस्तुतः उनके भी सब अधिकार छीन लिये गये। और वे भी सर्वसाधारण प्रजा की तरह जापान-नरेश की आज्ञा मानने और देश-हित की चिन्ता करने लगे।

---

* मिकाडो का अर्थ धर्मगुरु है। कुल जापाननरेश इस नाम से पुकारे जाते हैं।

चीन की तरह जापान भी सन् १८६८ ई० से पहले विदेशियों के अगम्य था। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव तब तक जापान पर कुछ भी नहीं पड़ा था। किन्तु उसके बाद जापान में आने जाने की रुकावट किसी के लिए न रही। जापानी लोग स्वाभाविक व्यापारी थे। वे भी व्यापार के लिए सब देशों के जाने आने लगे। इस तरह बहुत से जापानी इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में जाकर वहां का कला-कौशल, दस्तकारी और विज्ञान-विद्या सीख आये। अब इस समय जापानी किसी विषय में पश्चिमी देशों से कम नहीं हैं। अभी तक जापान में वे मनुष्य जीवित हैं जिन्होंने जापान के उसकी घोरनिद्रा, उपद्रव और लूट मार का समय, अपनी आंखों देखा है। और वही आदमी आज जापान के उन्नतिशिखर पर देख रहे हैं। क्या अपने देश के ऐसी दशा में देख उनका चित्त आल्हादित और प्रफुल्लित नहीं होता होगा? वे वीर-शिरोमणि मुत्सहिते के चित्त से अवश्य धन्यवाद देते होंगे। भारतवर्ष में ऐसे ही नरेश पूर्वकाल में परमेश्वर के अवतार समझे जाते थे। पाश्चात्य सभ्यता और विद्या में जो उन्नति जापान ने इतने अल्प काल में कर ली, उसका यश मार-कुइस इटो नामक मुत्सहिते के प्रधान अमात्य के भी है। बिदून उनकी सहायता के इतनी जल्द उन्नति जापान न कर सकता।

सन् १८७७ ई० में जापान में फिर एक बार शोगन लोगों ने उपद्रव मचाया था; किन्तु इस बार वे सर्वदा के लिए दबा दिये गये।

सन् १८८८ ई० में जापान में भी इङ्गलैण्ड की तरह दे राजसभायें स्थापित हुईं। एक में सर्व-साधारण के प्रतिनिधि बैठकर देश की भलाई के लिए विचार करते हैं, क़ानून बनाते हैं, और राज-कर सम्बन्धी आज्ञा देते हैं। इस सभा के इङ्गलैण्ड की पार्लियामेण्ट की तरह हैास-आफ-कामन्स (House of Commons) कहना चाहिए। इस के जापानीज़-डायट (Japanese Diet) के नाम से लोग पुकारते हैं। दूसरी सभा इङ्गलैण्ड के हैास आफ़ लार्ड् स् (House of Lords) की तरह है। इसमें जापान के बड़े ख़ानदान के लोग और सर्कारी अफ़सर बैठते हैं। जब दोनों सभाओं में कोई मन्तव्य पास हो जाता है तब वह मिकाडो के सामने पेश किया जाता है। सम्राट के अधिकार है कि वह दोनों सभाओं के पास हुए मन्तव्यों के अस्वीकार कर दे। किन्तु मिकाडो बहुधा अपनी प्रजा की इच्छानुसार ही आज्ञा देते हैं। ज़रा इस विलक्षणता के तो देखिए। पार्लियामेण्ट सभाओं और प्रजा-स्वत्वों के इङ्गलैण्ड ने सैकड़ों वर्ष बाद, अनेक यत्न, वध, उपद्रव, और हेर फेर से प्राप्त किया। उन के जापान ने केवल ३०-४० वर्ष में इतनी सरलता और उत्तमता से प्राप्त कर लिया! इस समय जापान की कुल प्रजा का स्वत्व बराबर है; चाहे वह किसी पुराने बड़े कुल का हो, चाहे साधारण आदमी हो। राजपद योग्यतानुसार दिये जाते हैं। कुल और धन का विचार नहीं किया जाता। इस समय प्रत्येक ऊँचे पद पर प्रायः साधारण कुल ही के योग्य मनुष्य अपनी योग्यतानुसार रक्खे गये हैं।

यद्यपि जापान में पश्चिमी सभ्यता का बहुत ही अधिक प्रचार होता जाता है; किन्तु यह सभ्यता बिना विचारे नक़ल नहीं की जाती। वे ही विषय जापानी लोग विदेशियों से ग्रहण करते हैं जिन की उनमें त्रुटि है; और जिनका ग्रहण करना वे योग्य समझते हैं। जैसे, विज्ञान, युद्ध-कौशल, राजनैतिकनैपुण्य, शिल्पविद्या, इत्यादि। सर्कारी दफ्तरों में तथा विदेशीय जनों से मिलने के समय वे योरोपीय ढङ्ग के वस्त्र धारण करते हैं। किन्तु अपने घर में वे अपने देशी ढङ्ग के वस्त्र और व्यवहार रखते हैं। विदेशीय भाषा और गुणों के वे ग्राहक हैं; पर साथही स्वदेशी भाषा और गुणों के शत्रु नहीं हैं।

जापान और कोरिया का सम्बन्ध, और वर्तमान युद्ध का मुख्य कारण, सरस्वती के तीसरे अङ्क

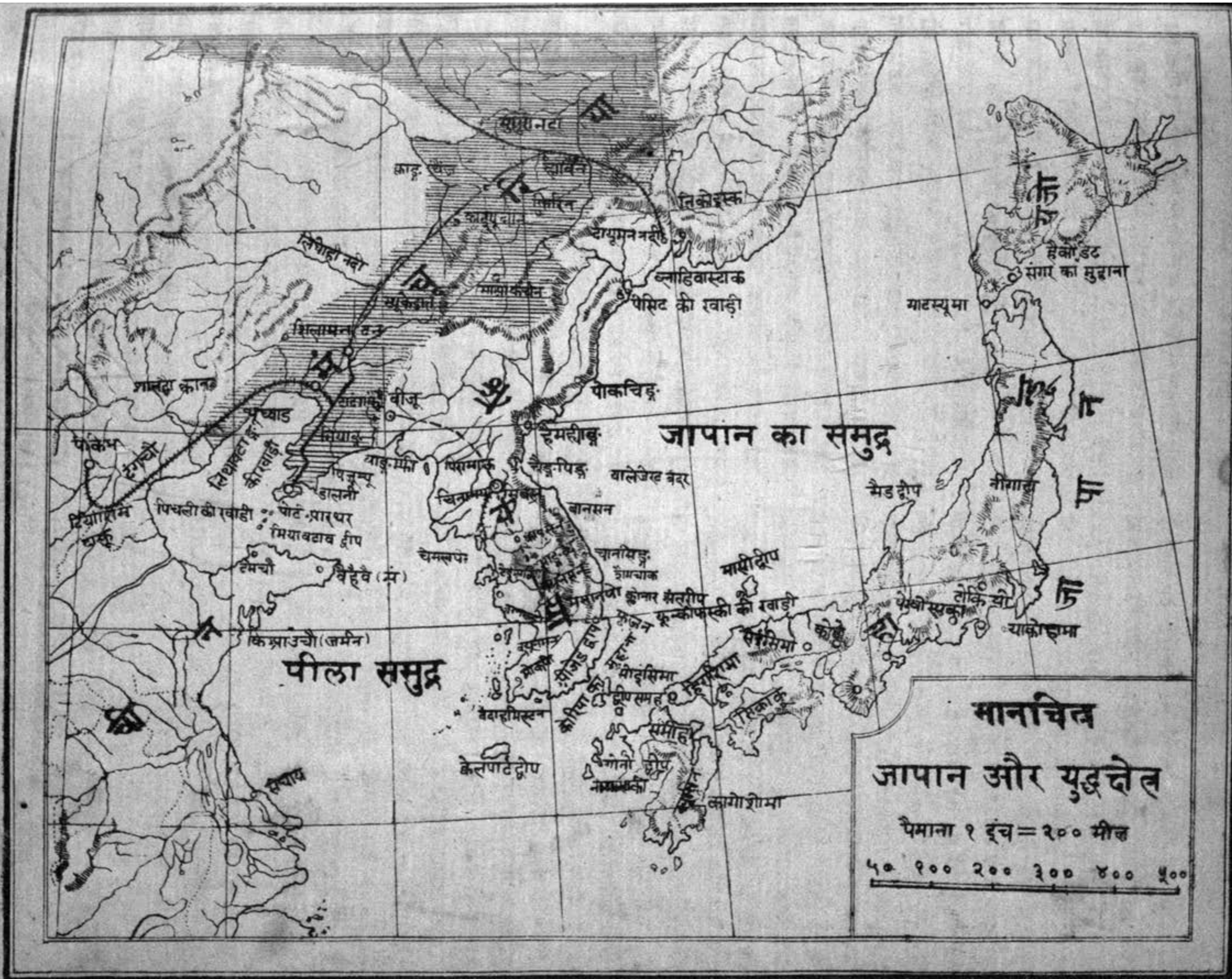

मानचित्र
जापान और युद्धक्षेत्र
पैमाना १ इंच = २०० मील
५० १०० २०० ३०० ४०० ५००
जापान का समुद्र
पीला समुद्र
तिकोइस्क
व्लाडिवास्टाक
पोसिट की खाड़ी
मात्स्यूमा
हैकोडेट
संगर का मुहाना
पोकचिङ्
हैमहीङ्
बालेजेब बंदर
गानसन
मैड द्वीप
नीगाटा
मात्सीद्वीप
फूजनसी की खाड़ी
योकोहामा
तोकियो
हीरोशिमा
सिकाकू
कैलपार्ट द्वीप
कागोशीमा
पिचली की खाड़ी
मियावटाव द्वीप
डालनी
चेमल्पो
शान्हाइ क्वान
पेकिंग
पीला समुद्र
तीनी

में प्रकाशित हो चुका है। अब इस विषय में मुझे इतना ही कहना शेष है, कि इसी घनिष्ट सम्बन्ध के कारण जापान को चीन के साथ सन् १८९४–९५ ई० में युद्ध करना पड़ा था, जिस में उसने चीन से विजय प्राप्त किया था। यदि उस समय रूस, जर्मनी, फ़ान्स और दूसरे योरोपीय देशों का दबाव न पड़ा होता, तो इस समय कोरिया जापान का एक सूबा हो गया होता; मञ्चूरिया का दक्षिणी भाग, पोर्टआर्थर, वैहैवै और उसके आस-पास के नगरों में जापानी झण्डा फहराता। किन्तु उस समय योरप की इन शक्तियों ने चीन के साथ ऊपरी मित्रता प्रकाश कर के जापान को कठिनता से प्राप्त किये हुए विजयफल से वञ्चित रक्खा। उन्होंने यह बहाना बतलाया कि चीन के विशाल और पुरातन राज्य की भूमि कोई देश हरण नहीं कर सकता और इस बात को स्थिर रखने के लिए सभी ने अपना अपना मन्तव्य प्रकाशित किया। किन्तु उनकी आभ्यन्तरिक इच्छा तो उस प्रान्त को स्वयं दबोच बैठने की थी। क्योंकि उस के कुछ ही दिन पीछे प्रबल रूस ने अपनी व्यापारी रेल की रक्षा के बहाने मञ्चूरिया और पोर्ट आर्थर पर अपना अधिकार जमा लिया; जर्मनी वालों ने कियौचौ पर अपना मोर्चा लगाया; अंग्रेज़ों ने वैहैवै को अपने अधिकार में किया; और इटली तथा फ़ान्स वालों ने भी दो छोटे छोटे द्वीपों पर घात लगाई। जापान को सिर्फ़ युद्ध का ख़र्च और फार्मोसा का द्वीप मिला।

ऊपर कहा जा चुका है कि कोरिया से जापान का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। युद्धारम्भ के पहले कोरिया में ६४,००० जापानी व्यापारी बसते थे। विदेशी व्यापारी केवल ८०० के क़रीब थे। जापानियों का कोरिया से सम्बन्ध १० पांच वर्ष से नहीं किन्तु शताब्दियों से चला आता है। जापान यद्यपि सन् १८९४–९५ ई० के युद्ध के बाद कोरिया को अपने अधिकार में करने नहीं पाया, तथापि जिस कोरिया के लिए उसको अपने पड़ोसी चीन से युद्ध करना पड़ा, और जिस कोरिया को वह अप्राप्त भी प्राप्त ही समझता है, उस कोरिया को वह विदेशीय रूस ऐसे प्रबल शत्रु के विस्तृत राज्य में मिश्रित होते देख कैसे चुप रह सकता था? रूस का, सब के देखते ही देखते, मञ्चूरिया पर अधिकार जमाना और कोरिया की सीमा पर अपनी सेना इकट्ठी करना जापान को असह्य हुआ। मञ्चूरिया के ख़ाली करने के लिए रूस सब योरोपीय राजाओं तथा जापान से सन्धि कर चुका था। किन्तु ख़ाली करने की मिति वह धीरे धीरे बढ़ाता गया। और इस दरमियान में अपना सैनिक बल और रण सामग्री भी वह बढ़ाता गया।

गत ८ अक्तूबर उसके मञ्चूरिया ख़ाली कर देने की अन्तिम तिथि थी। किन्तु तब तक उसने अपना सब सामान लड़ने का कर लिया; और उक्त तिथि को ख़ाली करने के बदले अपनी सब सामुद्रिक और स्थलिक सेना सज्जित कर उसकी क़वायद कराया, जिसमें किसीका साहस उसको मञ्चूरिया ख़ाली करने के लिये कहने को न पड़े। और वस्तुतः ऐसा ही हुआ भी; किसी योरोपीय राजा का साहस न पड़ा कि उससे अपनी सन्धि का पालन करने को कहै। जापान का तो इस पर अस्तित्व और अनस्तित्व अवलम्बित था अर्थात् यदि रूस मञ्चूरिया पर अपना पूर्णतः अधिकार जमा लेता और पोर्ट आर्थर और व्लाडिवास्टाक की समुद्री सेना प्रबल कर पाता, तो किसी न किसी दिन कोरिया भी उसके हस्तगत हो जाता। और कोरिया के जाने से जापान की स्वाधीनता में भय था। अथच उक्त ८ अक्तूबर से जापान निरन्तर मञ्चूरिया ख़ाली करने के लिए रूस को लिखने लगा। और इस लिखा पढ़ी में तीन मास व्यतीत हो गये। किन्तु रूस की इच्छा मञ्चूरिया ख़ाली करने की नहीं पाई गई। इसी से अन्त में गत् ता० ८ फरवरी की रात्रि से युद्धारम्भ हो गया।

जापान के पास युद्ध से पहले निम्नलिखित रण सामग्री थी—

युद्ध सन्नद्ध सेना ६,३२,००० जिसमें से ४,००,००० तुरन्त युद्धक्षेत्र में भेजी जा सकती थी।

तोप	१११६
फ़ौज़ी अफ़सर	११,७३५
अश्वारोही सेना	८६,४६०
बृहद्रण नौका (Battleships)	७
रक्षित रण नौका (Armoured Cruisers)	५
" दूसरे दर्जे की	१३
" तीसरे दर्जे की	६
छोटी रण नौकायें	८०
सामुद्रीक सेना	४०,०००
रिज़र्व	२०,०००

उसी समय रूस की रण सामग्री का लेखा यह था–

युद्ध सन्नद्ध सेना	४६,००,०००
तोप	५,०००
बृहद्रणनौका (Battleships)	२८
रक्षित रण नौका	३३

इनमें से ६ पुरानी और आधी तीसरे दर्जे की थीं।

छोटी रण नौकायें	१२७
समुद्री सेना	६४,०००
रिज़र्व	२०,०००

रूस और जापान के युद्ध का प्रथम स्कन्ध तो हो चुका। अर्थात् जापान ने रूस को समुद्र में बुरी शिकस्त दी। रूस की बहुत सी रणनौकायें नाश हो गईं। शेष भी नाशप्राय हैं। रूसियों का साहस खुले समुद्र में आकर जापानियों से लड़ने का नहीं पड़ता। रूस की जलसेना के नायक ऐडमिरल मेकरफ समेत रूस की एक बृहद्रण नौका को जापान ने डुबो दिया। इस ख़बर को सुनते ही रूस में आतङ्क सा छा गया। परन्तु पीछे से जापान के भी दो एक जहाज़ डूबे और उनके साथही कोई ७०० आदमी समुद्र में निमग्न हो गये। परन्तु इस से जापानियों का उत्साह कम नहीं हुआ। जापानी जाकर पोर्ट आर्थर पर बार बार हमला करते और गोले बरसाते हैं। पोर्ट आर्थर की हालत बुरी हो रही है। उसके बहुत से मकान गोलों से टूट फूट गये हैं। ये गोले भी अद्भुत हैं। उनका वज़न ८६४ पौण्ड अर्थात् ११ मन है। उनको जापानी अपनी तोपोंसे ७ या ८ मील की दूरी से मारते हैं; और वे शहर में गिर कर और फूट कर भयानक उपद्रव मचाते हैं। एक बार जापान ने २० मिनट में ऐसे ४०० गोले व्लाडिवास्टाक पर मारे। यद्यपि रूसी उनसे कुछ हानि होना नहीं बतलाते हैं, तथापि, यह सम्भव नहीं है, कि उनसे कुछ क्या, विशेष हानि न हुई हो। पोर्ट आर्थर पर तो अब तक ऐसे सहस्रों गोले बरसे हैं; और रूसी भी उनसे कुछ हानि होना स्वीकार करते हैं। सारांश यह, कि समुद्र में रूसियों से विजय प्राप्त कर जापान स्थली सेना सुख से कोरिया में इतस्ततः उतार रहा है। और यह सम्भव है कि अब तक न्यूनाधिक ३००००० सेना और बहुत सी रणसामग्री उसने उतार दी हो। यह नितान्त गुप्त है, कि कहां पर, कितनी सेना उतरी है; और किधर से रूसियों पर जापान हमला करेगा। किन्तु अधिकतर चिमलफो में उतर कर सिवल से होती हुई विजू की ओर सेना बढ़ रही है। इस बीच में कई स्थल युद्ध भी हो गये हैं, जिन में जापानियों ने अपनी रण चातुरी और साहस का उदाहरण दे कर रूसियों के दांत खट्टे किये हैं। और ऐसा सुनने में आया है कि जापानी इस समय विजू के आस पास पहुँच गये हैं और रूसी वहां से हट कर आराटङ्क में अपना मोर्चा जमा रहे हैं। यदि जापानियों ने रूस को आराटङ्क से हटाया तो रूसियों को म्यूकेडान के इस तरफ़ ठहरने का ठिकाना नहीं लगेगा। यह भी कहा जाता है, कि जापानी लिआटाङ्क प्रायद्वीप में उतर कर न्यूच्वाङ्क पर शीघ्र हमला करने वाले हैं। ऐसी दशा में रूसी दोनों ओर की मार में पड़ कर अवश्य म्यूकेडान को राह लेंगे। और यदि वे पोर्ट आर्थर ख़ाली न कर देंगे, तो भी, उनको शीघ्र ख़ाली करना पड़ेगा, पोर्ट आर्थर के ख़ाली होते ही युद्ध का दूसरा स्कन्ध भी समाप्त हो जावैगा।

अब यह विचारने का स्थल है कि जापान अपनी इस विजय के कब तक क़ायम रख सकता है। क्या रूस ग्रैार रणनैाकायें भेज कर जापान पर समुद्र में विजय नहीं प्राप्त कर सकता ? क्या रूस अपनी बृहद्रण-सेना भेज कर जापान के मिट्टी में नहीं मिला सकता है ??

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस के पास अभी बहुत सी रणनैाकायें हैं। यदि वे सब क्या उनकी आधी भी एक साथ युद्धक्षेत्र में पहुँच सकें, तो जापान के बहुत बड़ी हानि पहुंचा सकती हैं। किन्तु रूस की बहुत सी रणनैाकायें काले समुद्र (Black Sea) में फँसी हैं। वहां से निकलने का केवल एक मार्ग, बासफोरस का मुहाना, है, जहां से किसी रणसामग्री के न आने देने के लिए योरोपीय नरेशों में सन्धि हो चुकी है। अथच उस मार्ग होकर काले समुद्र की रणनैाकाओं के निकलने में योरोपीय शक्तियों से, विशेष कर जापान के प्रिय हितैषी इङ्गलैण्ड से, छेड़ छाड़ होने की सम्भावना है। काले समुद्र के बाहर इतनी रणनैाकायें नहीं हैं जिनको रूस जापान के मुक़ाबिले भेजने का साहस करै। अथच जापान ने इस समय समुद्र में रूस से सर्वथा विजय प्राप्त कर ली। रूस इस समय नई नई रणनैाकायें ख़रीद कर रहा है ग्रैार काले समुद्र के जहाज़ी बेड़े के शीघ्र ही रणस्थल में भेजना चाहता है। परन्तु जापान भी चुप नहीं है; वह भी अपना सामुद्रिक बल बढ़ा रहा है।

अब रही स्थल सेना। निस्सन्देह यदि रूस अपनी सब स्थल सेना क्या, उसका चतुर्थांश भी युद्धक्षेत्र में भेज सकै तो जापान की सेना के बहुत जल्द तीन तेरह कर सकता है। किन्तु दुर्भाग्य-वश रूस के युद्धक्षेत्र में रणसामग्री भेजने के लिए केवल एक रेल का मार्ग है, जो मास्को से ५००० मील दूर है। फिर रेल की सड़क ऐसी बुरी बनी है, कि केवल १० से १५ गाड़ियां एक एञ्जिन, फी घण्टा १० मील के हिसाब से ले जा सकता है। अब मान लीजिये, कि रूस २,००,००० पैदल सेना ५०,००० अश्वारोही सेना, तथा ५०० तोपें युद्धक्षेत्र में रक्खे, तो इनके लिए नित्य प्रति कितनी सामग्री भेजने की आवश्यकता होगी। २,५०,००० सेना के लिए १,००,००० फ़ालोअर्स (भिश्ती, बावर्ची, साईस, ख़िदमतगार, डाक्टर, इञ्जिनियर, डोलीवाले इत्यादि) चाहिए। अतः ३,५०,००० आदमियों के लिए नित्य प्रति १ सेर अन्न, आधसेर दूसरा सामान (कपड़ा, जूता बारूद इत्यादि) चाहिए; अर्थात् पूर्वी सेना के लिए १३,१२५ मन सामान नित्य चाहिए; ५०,००० घोड़ों के लिए २० सेर घास ग्रैार ५ सेर दाना के लिए ३१,२५० मन अन्न की आवश्यकता पड़ेगी। ५०० तोपों के लिये ग्रैासत रोज़ ५,६२५ सेर बारूद ग्रैार गोले चाहिएं। इस तरह रूस के २,००,००० सेना रखने के लिये ५०,००० मन सामान नित्य पहुंचाना पड़ेगा। यदि प्रति गाड़ी में २०० मन बोझ लादा जावै ग्रैार यदि ग्रैासत १२ गाड़ी फ़ी एञ्जिन खींच कर ले जावे तो एक ट्रेन में २४०० मन सामान जा सकेगा। इस प्रकार मास्को से २० ट्रेनें नित्य सेना के लिए जानी चाहिएं। ग्रैार इतनी ही उधर से आनी चाहिएं। अर्थात् ४० ट्रेनें रोज़ रोज़ आया जाया करें। यानी प्रति ३६ मिनट यदि गाड़ी खुला करै तो २,००,००० सेना, ५०,००० सवार रणक्षेत्र में रह सकते हैं। किन्तु यह सम्भव नहीं है। प्रथम तो इतनी गाड़ियां ग्रैार एञ्जिन मिलना दुष्कर है। यदि यह भी सुकर मान लिया जावै, तो सेनायों के पूरी करने के लिये दूसरी सेनायें भी भेजनी पड़ेगी। इसके अनन्तर ६०० मील शत्रु के देश में लाइन है। इसकी रक्षा के लिए अत्यन्त सावधान रहना होगा। फिर जापानियों ने दूर तक रेल के तोड़ भी दिया है। सारांश यह कि इससे अधिक सेना रूस कदापि नहीं भेज सकता।

पूर्वोक्त बातों का विचार करके जापान अपने प्रबल शत्रु से निर्भीत लड़ रहा है। समर मैदान में वह अपनी वस्तुतः कुल सेना रख सकता है।

समुद्र में विजय प्राप्त करने से वह मनमाना सामान समुद्र द्वारा पहुँचा सकता है। कोरिया से वह बहुत सा सामान ले सकता है।

समाचार मिला है, कि कोरिया की १६,००० सेना जापान की ओर हो गई है। यद्यपि यह सेना भली प्रकार सुशिक्षित नहीं है, तथापि कुछ न कुछ उपकार अवश्य करेगी। चोन अपनी अपरम्पार सेना लिए किनारे से देख रहा है सम्भव है कि स्थल युद्ध में थोड़ा विजय प्राप्त करने पर वह जापान का साथ दे। तब तो रूसियों से एकदम मञ्चूरिया से हट सैबीरिया ही में शरण लेना पड़ेगा।

हमारे कतिपय फ़ारसी पढ़े मित्रों का कथन है, कि रूस की क़ज़्ज़ाक़ी (Cossacks) सेना बड़ी प्रबल है। लेकिन उनको यह याद रखना चाहिए कि जापानी कम वीर नहीं हैं। वे अपने देश के लिए अपने प्राण न्योछावर किये बैठे हैं फिर आजकल तलवार की लड़ाई नहीं है जिसमें मनुष्य का शारिरिक बल काम देता है। अब तो तोप और बन्दूकों से बड़े बड़े वीरों को एक बालक मार गिरा सकता है।

चीनयुद्ध के बाद, जिस प्रकार, सन् १८९५ ई० में, रूस के साथ फ्रान्स जर्मनी इत्यादि ने मिल कर, जापान को युद्ध का फल नहीं लेने दिया, उसी प्रकार, सम्भव है, इस बार भी रूस से विजय प्राप्त करने पर, किम्वा रूस को हारते देख कर, फ्रान्स जर्मनी इत्यादि उसकी सहायता के लिए सन्नद्ध हो जांय। परन्तु तब और अब में बहुत अन्तर है। इस समय बृटिशसिंह सन्धिद्वारा जापान का साथ देने को बद्ध परिकर है। पाठकों को स्मरण होगा, कि गत ३० जनवरी सन् १९०२ ई०, को जापान और इङ्गलैण्ड में सन्धि हो चुकी है। जिसका सारांश यहां लिखा जाता है—

"ग्रेट ब्रिटेन और जापान अत्यन्त पूर्वीय देशों में शान्ति स्थापन के लिए, चीन और कोरिया की रियासतों को क़ायम रखने, तथा दूसरे योरोपीय और अन्य देश-वासियों की तरह निज व्यापार बढ़ाने के लिए नीचे लिखे अनुसार सन्धि करते हैं—

"दोनों एक दूसरे के हितेच्छुक रहेंगे, और अपनी अपनी बातें एक दूसरे से निष्कपट भाव से प्रकाशित करेंगे। अकस्मात् पूर्वोक्त विषयों में यदि किसीको विघ्न की आशङ्का होगी, और उसकी निवृत्ति के लिए यदि इनमें से किसीको शस्त्र ग्रहण करना पड़ेगा, तो दूसरा उसमें उस समय तक शामिल न होगा। जब तक शत्रु की सहायता और कोई न करेगा; तथा दूसरे को शत्रु की सहायता करने से वह यथा शक्ति रोकेगा; किन्तु यदि और कोई शत्रु का साथ देगा तो दूसरा भी अपने मित्रका साथ देगा और इस अवस्था में अन्त में सुलह दोनों की राय से होगी।"

इसी सन्धि के भय से अभी तक कोई रूस का साथ नहीं दे सका और न कोई साथ देने का साहस कर सकता है; क्योंकि रूस को स्थल सेना में तो सहायता आवश्यक नहीं; सामुद्री सेना में किसका सामर्थ्य जो ब्रिटिश सिंह के सामने आने का साहस करै।

पाठकों के अवलोकनार्थ युद्धक्षेत्र का एक चित्र तथा रूस और जापान के सम्राटों का एक एक चित्र भी इस लेख के साथ दिया जाता है।

इस लेख के समाप्त होने पर रूस और जापान युद्ध ने बहुत ही भीषण रूप धारण किया है। यालू नदी पर जापान ने पहले पहले रूस को स्थल में परास्त किया। फिर किंचाऊ पर कब्ज़ा करके नानशान में दूसरी बार उसको बहुत भारी शिकस्त दी। इस पिछली लड़ाई में जापान के कोई ३००० आदमी मरे और घायल हुए; परन्तु रूस की ७८ तोपें और अनन्त युद्ध सामग्री उसे मिलीं। जापान के शौर्य्य, रणकौशल और सेना संचालन को देखकर उसके शत्रु भी इस समय उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। जापान ने रूस के डालनी बन्दर को भी अपने अधिकार में कर लिया। अब वह पोर्ट आर्थर लेने के फिराक़ में है।

जीतनसिंह।

"सरोजिनी" और "राजपूत"।

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

—भर्तृहरि।

बाबू ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर बँगला भाषा के एक विख्यात ग्रन्थकार हैं। उन्होंने "सरोजिनी नाटक" नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद बनारस के "भारतजीवन" के सम्पादक बाबू रामकृष्ण खत्री ने प्रकाशित किया है। १३०३ ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर राना लक्ष्मणसिंह (लखमसी) आसीन थे। उनके चचा का नाम भीमसिंह (भीमसी) था। भीमसिंह की रानी पद्मिनी की सुन्दरता पर लुब्ध होकर देहली के तदानीन्तन बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौर पर दुबारा चढ़ाई की* घोर संग्राम हुआ। लक्ष्मणसिंह के १२ पुत्र थे। उनमें से ११ लड़ाई में मारे गये। लक्ष्मणसिंह स्वयं भी मारे गये। क्षत्रियों का पराजय हुआ। अतएव मुसलमानों से परित्राण पाने की इच्छा से रानी पद्मिनी समेत सहस्रशः राजपूत-रमणियां अनल-प्रवेश कर गईं। इसी कथा के आश्रय पर "सरोजिनी नाटक" लिखा गया है।

इस नाटक में लक्ष्मणसेन की एक कल्पित कन्या का उल्लेख है। उसका नाम सरोजिनी है। उसीके नाम पर इस पुस्तक का नाम रक्खा गया है। उसके सम्बन्ध में लक्ष्मणसिंह के जिन कार्यों का वर्णन इसमें है वे ऐतिहासिक नहीं हैं; वे कल्पित हैं; वे केवल कवि-कर्म्म हैं। उनमें से बहुत सी बातों को "वेङ्कटेश्वर समाचार" ने सदोष बतला कर इस पुस्तक की समालोचना की; उनको उसने लक्ष्मणसिंह के चरित की अपकर्षसूचक बतलाईं; राजपूतों के लिए अपकीर्तिजनक बतलाईं। इसपर "वेङ्कटेश्वर समाचार" और "भारतजीवन" में बहुत दिन तक "भवति न भवति" हुई। अनन्तर, इस विषय पर "राजपूत" ने लेखनी उठाई; और कई महीने तक "राजपूत" और "भारतजीवन" से वाद प्रतिवाद होता रहा। इस विवाद के सम्बन्ध में "भारतजीवन" के लेख यद्यपि बहुतही तीव्र और उसके लिखने का प्रकार यद्यपि बहुतही कुटिलता-गर्भित हुआ; यद्यपि कहीं कहीं पर उनमें सभ्यता की सीमा तक का उल्लंघन हो गया; यद्यपि अनेक स्थलों पर व्यर्थ, अनावश्यक और अप्रासङ्गिक बातें मर्मभेदी वाक्यों में कही गईं तथापि "भारतजीवन" के उत्तरों का बहुत कुछ अंश योग्यता, पाण्डित्य, बहुदर्शिता और चातुर्य्य से भरा हुआ है। "भारतजीवन" की युक्ति, तर्कनाप्रणाली और सिद्धान्त को हम मानें या न मानें; परन्तु इस विवाद में अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करने के लिए, पीछे से, उसने जो लेख लिखे, वे बड़ी ही योग्यता से लिखे। यह हम स्पष्टतया स्वीकार करते हैं।

"भारतजीवन" और "राजपूत" में परस्पर के विवाद का अन्त न होता देख, इस विषय का निर्णय पञ्चों के द्वारा कराना निश्चित हुआ। बहुत कुछ लिखा पढ़ी के पीछे बाबू श्यामसुन्दर दास, बी. ए., बाबू राधाकृष्णदास और हम पञ्च नियत हुए। इस काम के लिए न हमको समय था और न इसको करने की हमारी इच्छा ही थी। उधर "भारतजीवन" की भी शायद यही इच्छा थी कि हमारी जगह पर कोई और हो तो अच्छा। क्योंकि पहले तो उसने पञ्चों के नाम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया; परन्तु जब सरस्वती में "चातकी की चरमलीला" नामक चित्र छपा, तब उसने चुपचाप एक दूसरे महाशय के नाम का प्रस्ताव किया। खैर, अपनी अपनी समझ तो है। उसने शायद अपना ऐसा चित्त सबको समझ रक्खा है। समझे। अन्त में, "भारतजीवन" और "राजपूत" के लिखने पर हमको इस काम में योग देना हीं पड़ा। पञ्चों के नियत हो जाने पर "भारतजीवन" ने हमको यह पत्र लिखा—

* उदयपुर-दरबार के काग़ज़ पत्रों से यह बात सूचित नहीं होती; वहां पर यह एक दूसरे ही प्रकार से लिखी है। सं० स०

"श्रीरामः

श्रीयुत महाशय—

यथोचित के अनन्तर विदित हो कि आप इस पुस्तक का अवलोकन कर अपना सिद्धान्त प्रगट कर दीजिये। १—सरोजिनी।

उक्त पुस्तक के विषय में राजपूत का और हमारा मतभेद है। उनका कथन है कि यह पुस्तक क्षत्रियों की निन्दासूचक है। आप दोनों ओर से मध्यस्थ ठहराये गये हैं अतः यह बतलाइये कि यथार्थ में इस पुस्तक में उक्त दोष है या नहीं? यदि है तो उस अंश को निकाल के इसका प्रचार हो सकता है या नहीं? न्यायप्रार्थी

Ramkrishan Varma

18-1-04 मैनेजर भारतजीवन काशी।"

इसपर हमने "राजपूत" को अपने एतराज़ पेश करने के लिए कहा। "राजपूत" ने ये एतराज़ किये—

"इस पुस्तक में चित्तौड़ के राणा लक्ष्मणसिंह पर इतिहासविरुद्ध बहुत से मिथ्या दोष लगाये हैं। जिन में से कुछ नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अपने राज्य जाने के भय से अपनी आत्मजा के बलिदान (शास्त्रविरुद्ध निष्ठुर कर्म्म) के लिये उद्यत हुए।

(२) पुस्तक भर में किसी पात्र ने राणा लक्ष्मण सिंह को भला नहीं कहा। रानी ने बहुत ही घृणित शब्दों से अपने पति का तिरस्कार किया है। देखो पृष्ठ ११२—११३

राजकुमारी ने अपने बाप को निष्ठुर समझा था, क्योंकि पृष्ठ १०२ में कहा है—"देखेंगे कि मा रोती हैं, तब भी क्या उनके मन में दया उत्पन्न न होगी।"

अमला [पृष्ठ १२९] "राजकुमारि! तुम्हारा मन्दिर में कुछ प्रयोजन नहीं है। महाराज तो इस समय पागल सदृश हैं, एक बार भागने को कहते हैं, दूसरी बार फिर बुला भेजते हैं; तब क्या उनकी बात सुनने योग्य है?"

विजय सिंह—[राजकुमारी के भावी पति] (पृष्ठ ११५) "महाराज, आज एक अद्भुत जनश्रुति सुन पड़ती है। वह बात ऐसी भयानक है कि कहते ही मेरा सब शरीर कण्टकित होता है। क्या आप की अनुमति से आज सरोजिनी का बलिदान होगा? आप ने आज क्या स्नेह, माया, मनुष्यत्व सबको एकबारगी जलाञ्जलि दे दी? मेरे साथ विवाह होगा इस छल से उसको मन्दिर में ले जाइयेगा? क्या यह सत्य है?"

रणधीरसिंह [सेनापति]—(पृष्ठ १२४) "वे ऐसे अस्थिरचित्त हैं कि ऐसा करना कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं।"

सूरदास [भृत्य]—(पृष्ठ १३६ "एक दो मनुष्य नहीं, सारी सेना इस निष्ठुर कार्य्य में लगी है, कहीं दया का लेश मात्र नहीं है। इस समय भैरवाचार्य ही सर्वमय कर्त्ता हो कर प्रभुत्व कर रहा है और बलिदान के निमित्त अत्यन्त व्यस्त है। महाराज भी राज्य जाने के डर से उन्हीं के मत से चलते हैं।"

मुहम्मद अली—(पृष्ठ १४१) "सो इस बात को वह निर्बोध धर्मान्ध लक्ष्मणसिंह दैववाणी जान कर विश्वास करता है।"

(३) लक्ष्मणसिंह इस पुस्तक से डरपोक, झूंठे, चालाक, अपस्वार्थी, बुद्धिहीन और अयोग्य सिद्ध होते हैं यथा—

भीरुता—(पृष्ठ १) "अभी भी मेरा हृदय कांपता है"।

(पृष्ठ ३१) "स्मरण करने से अब भी हृदय कांपता है।"

झूठ—(पृष्ठ ६६) "लक्ष्मणसिंह—नहीं वत्से! तुमसे कोई अपराध नहीं हुआ इस समय युद्ध सज्जा में बहुत बातें सोचने की होती हैं। इससे तुम मुझ को अन्यमनस्क देखती हो।"

(पृष्ठ ८४) 'लक्ष्मणसिंह—देवि! अब तो हमारा सब भ्रम दूर हुआ और मन का सन्देह मिट गया। अब तो विवाह की सामग्री करनी चाहिये।"

(पृष्ठ १०७) "लक्ष्मणसिंह-देवि, भैरवाचार्य्य प्रस्तुत हैं, विवाह के समस्त उद्योग हो गये हैं, मुझे जो कुछ सामग्री करनी थी सब कर चुका हूं"।

छलछिद्रता—राणा लक्ष्मणसिंह ने विवाह के छल से राजकुमारी को बलिदान के लिये बुलाया।

अपस्वार्थता-(पृष्ठ १११) "रणोन्मत्त यवनद्वेषी राजपूत सेनापति गण मुझको अभी तलवार से खण्ड खण्ड करके मेरे प्रतिद्वन्दी किसी राजकुमार को राजा बना देवें, इससे बेटी! अब कोई आपत्ति न करो, अपनी आसन्न विपद् निश्चय जानकर मन को दृढ़ करो"।

बुद्धि हीनता-(पृष्ठ ११९-१२०) "जो अब स्नेह-वश सरोजिनी को बलिदान से बचाऊं तो विजय-सिंह जानेगा कि मैं ने उसके भय से ऐसा काम किया है, नहीं यह कभी न होगा"।

अयोग्यता—राणा लक्ष्मणसिंह की अयोग्यता इनके प्रत्येक काम से तो प्रगट होती ही है, परन्तु स्वयम् भी अपने को ऐसाही जानते थे जैसा कि पृष्ठ ३३ में राणा लक्ष्मणसिंह कहते हैं—"यह बात न पूछो: रामदास! हमारे सदृश मूढ़ और दुर्बलचित्त पुरुष संसार में दूसरा नहीं है। हम पहिले किसी भांति सम्मति न देते थे, परन्तु रणधीर ने, कठिनवत्* रणधीर ने, इस बलिदान के पक्ष में ऐसी ऐसी बातें कहीं कि हम उनका उत्तर न दे सके और हमें सम्मति देनी ही पड़ी"।

नोट—इस पुस्तक के ये थोड़े से दोष हमने संक्षेपतः दिखाए हैं। यदि किसी क्षत्रिय राजा के सम्बन्ध में इतिहास प्रतिपादित सच्चे दोष लिखे जायँ तो कोई ऐतराज़ नहीं। परन्तु किसी पर मिथ्या कलङ्क लगाये जायं या किसी का दोष किसी पर आरोपित किया जाय यह अनुचित बात है। किसी इतिहास से महाराणा लक्ष्मणसिंह कायर, झूठे, चालाक, अपस्वार्थी, बुद्धिहीन और अयोग्य सिद्ध नहीं होते और न कन्या बलिदान जैसा अमानुषिक निष्ठुर कर्म्म कोई उन्हों ने कभी करना चाहा, इस-लिये राणा लक्ष्मणसिंह के सम्बन्ध में ऐसा उपन्यास लिखा जाना अनुचित है। यद्यपि इस ग्रन्थ में सरोजिनी की पितृभक्ति दिखलाई गई है, परन्तु सरोजिनी की पितृभक्ति राणा लक्ष्मणसिंह की निर्दयता और कायरता के सामने सीसोदिया कुल का कुछ गौरव नहीं बढ़ाती। इस पुस्तक में राणा लक्ष्मणसिंह की ही क्या चित्तौरके सबही राजपूतों की निर्बुद्धता, निर्दयता और अयोग्यता प्रगटहोती है।"

अनन्तर "भारत जीवन" से कहा गया, कि इन एतराज़ों का वह उत्तर दे। उसका उत्तर यह है—

(१) "अपने राज्य जाने के भय से इत्यादि—राज्य के लोभ से नहीं किन्तु देश की रक्षा के निमित्त। (शास्त्रविरुद्ध) वाल्मीकिरामायण बाल-काण्ड में शुनःशेफ का वृत्तान्त आया है कि उसके पिता ने बलिप्रदान के निमित्त उसे दे दिया और विश्वामित्र ने उसकी रक्षा की, हरिश्चन्द्र से दानी पर क्या दोषारोपण नहीं हो सकता है? अस्तु राणा लक्ष्मणसिंहजी के विषय नाट्य के अनुरोध से मानवस्वभाव का चित्र खींचा है किन्तु राणा भीमसिंह ने तो सत्यही कन्या कृष्णकुमारी का बध कर डाला था। (विशेषता के लिये भा० जी० २१ सितम्बर १९०३ का अङ्क पुनः पढ़ लिया जाय)।

(२) पुस्तक भरमें किसी पात्रने राणा लक्ष्मण-सिंह को भला नहीं कहा इत्यादि—कर्त्तव्यपरायण लोग निन्दा अथवा स्तुति की उपेक्षा ही रखते हैं। यद्यपि कर्त्तव्यपरायणों के कार्य्य को अपर लोग निन्दा करते हैं किन्तु उस निन्दा से उनकी स्तुति ही समझनी चाहिए। कर्त्तव्य के समक्ष यह कोई तत्व ही नहीं है। कर्त्तव्य ही के अनुरोध से श्री रामचन्द्रजी ने सीता सी पतिव्रता को त्याग कर दिया तो औरों की बात ही क्या। इससे तो लक्ष्मणसिंह जी का उत्कर्ष नकि अपकर्ष सिद्ध होता है।

रानी ने बहुत घृणित शब्दों में अपने पति का तिरस्कार किया है इत्यादि। स्नेहवश रानी के मुंह से वैसे शब्द निकले। यदि उस अवसर पर ऐसे

* कठिनवत (?)-सम्पादक।

शब्दों का प्रयोग न किया जाता तो नाट्य फीका पड़ जाता। देश काल और पात्र के अनुरोध से नाटक वा काव्य की रचना की जाती है। (इस का स्वाद कवि ही जान सकते हैं) । मानवप्रकृति का चित्र खिंचा है नकि रानी का औद्धत्य दिखाया गया है। यदि औद्धत्य का पक्षही लिया जाय तो कौशिल्या ने दशरथजी को कैसे कैसे वचन सुनाये थे, तब तो वाल्मीकिरामायण की क्या दशा होगी? नहीं समयानुसार प्रकृति दर्सायी गई है।

राजकुमारी ने अपने बापको निष्ठुर समझा था इत्यादि। राजकुमारी जो कुछ समझें अथवा दूसरे ही जो चाहें, किन्तु राजकुमारी के वैसे वचन, कर्त्तव्य के अनुरोध से मार्जनीय हैं। लक्ष्मण ने भरत के विषय क्या नहीं कहा था?

अमला–"राजकुमारि! तुम्हारा मन्दिर में कुछ प्रयोजन नहीं है इत्यादि।" इससे कर्त्तव्य और मोह की मध्यावस्था दिखाई गई। एक ओर कर्तव्य दूसरी ओर दुहितृप्रेम। उभय सङ्कट में पड़कर प्रमादावस्था की छाया उतारी गई है। मानवी प्रकृति का चित्र ही नाटक का अङ्ग है।

विजयसिंह (राजकुमारीके भावी पति) "महाराज आज एक अद्भुत जनश्रुति सुन पड़ती है इत्यादि।" उस समय वैसा प्रश्न करना उनका उचित है क्योंकि वह सरोजिनी के भावी पति थे। उनको विश्वास न था कि राणा ऐसा कार्य्य करेंगे, वा करने देंगे। अतः ऐसे प्रश्न किये। जो कुछ उन्होंने कहा कर्तव्यपरायण के पक्ष में मार्जनीय है। भीम ने युधिष्ठिर को क्या २ नहीं कह सुनाये?

रणधीर (सेनापति) "वे ऐसे अस्थिरचित्त हैं कि ऐसा करना इत्यादि"। घड़ी के पेण्डुलम का दृष्टान्त मानवप्रकृति का पूरा उदाहरण है। असमञ्जस में क्या विवेचना?

सूरदास (भृत्य) "एक दो मनुष्य नहीं; सारी सेना इस निष्ठुर कार्य्य में लगी है"। इत्यादि। भावना जिस की जैसी होती है वह वैसी कल्पना कर लेता है, यही इसका दृष्टान्त है। नाट्यानुरोध।

मुहम्मदअली—"जो इस बात को वह निर्बोध धर्म्मान्ध लक्ष्मणसिंह दैववाणी जानकर विश्वास करता है"। क्यों न कहे वह तो उस विषय से पूर्ण अवगत है। राणा तो पूर्ण विश्वासी हैं फिर उन पर दोषारोपण कैसा! प्रत्युत उनकी प्रशंसा होनी चाहिये, क्योंकि मोहम्मद अली स्वयं उन्हें धर्म्मान्ध कह रहा है।

(३) "लक्ष्मणसिंह इस पुस्तक से अयोग्य झूठे इत्यादि सिद्ध होते हैं"। कदापि नहीं, विपरीत। यशरूप न कि निन्दास्वरूप।

भीरुता—(भारतजीवन १९ अक्तूबर १९०३ का अङ्क पर्य्याप्त है।)

झूठ—समय ही ऐसा था। युधिष्ठिर और अश्वत्थामा का विषय महाभारत में क्या है? पेण्डुलम की गति है। असमञ्जस की बात है। राजनीति भी है। भागवत में बलि के प्रति शुक्राचार्य्य के उपदेश पठनीय हैं।

छलछिद्रता—अपने कर्तव्य के पालनार्थ निन्दनीय नहीं है। विष्णुकृत जलन्धरभार्याछलन क्यों है? उनका मोहिनीरूपधारण क्या है? परमात्मा पर दोषारोपण हुआ न, तो मनुष्य की परिमित बुद्धि का प्रसार कहा लों?

"अपस्वार्थता"। प्रलापावस्था मानवप्रकृतिदर्शन। कृच्छावस्था के अनुरोध से मार्जनीय है।

"बुद्धिहीनता"—प्रलापावस्था—तथा—तथा।

"अयोग्यता"—एक दृष्टि से; अपर से, योग्यता और कर्तव्यपरायणता के कारण विश्वस्तता।

नोट–यह संक्षेप निर्दोषता दिखा दी गई है। किन्तु भारतजीवन के २१ सितम्बर १९०३ के अङ्क से लेके १९ अक्तूबर १९०३ पर्य्यन्त के अङ्कों के पढ़ने और उनमें लिखित बातों पर मनन करने से राजपूतकृत सब प्रश्नों का निराकरण हो जाता है, पुनः सरोजिनी की निर्दोषता में किञ्चित् भी सन्देह नहीं रह जाता। यहां पर भारतजीवन का वक्तव्य समाप्त हुआ।

उदयपुर की कृष्णाकुमारी के प्राणसंहरण की बात और उसका कारण सब पर विदित है।

सुनते हैं, किसी समय, भारतवर्ष के किसी किसी प्रान्त में, शिशुओं पर भी अत्याचार होता था। इन बातों के आधार पर, या शुनःशेफ़ और विष्णु के मोहिनीरूप वग़ैरह के आधार पर, यदि कोई नाटक बनावे, तो बना सकता है। इनमें ऐतिहासिकता का अंश विद्यमान है। कृष्णकुमारी नाटक लिखा गया ही है। तथापि हम ऐसा करने की आवश्यकता नहीं देखते। किसी देश, जाति, या व्यक्ति के अयोग्य और त्याज्य व्यवहारों का प्रदर्शन तभी उचित कहा जा सकता है जब वह उन व्यवहारों को दूर करने की इच्छा से किया गया हो; अन्यथा नहीं। किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर पुस्तक लिखकर आक्षेपयोग्य कल्पित बातें न लिखना चाहिये। नायक और नायिका के चरित का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष दिखलाने के लिए कवि मनमानी कल्पना कर सकता है; ऐतिहासिक घटनाओं में न्यूनाधिक कर सकता है; इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु वह उत्कर्ष अथवा अपकर्ष देश, काल और समाजव्यवस्था के अनुकूल होना चाहिए। भारतजीवन ने अपने कई अङ्कों में राजपूत के आक्षेपों के जो उत्तर दिये हैं वे हमने मनोनिवेशपूर्वक पढ़े। उनमें रामचन्द्र के सीता परित्याग पर बहुत ज़ोर दिया गया है। इस पर हम कुछ कहना चाहते हैं। उत्तर रामचरित में रामचन्द्र कहते हैं—

स्नेहं दयां तथा सौख्यं यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

प्रजारञ्जन के लिए, लोक की आराधना के लिए, रामचन्द्र ने, सीता को सती जान कर भी, छोड़ दिया। वे आदर्श पुरुष थे; वे राजा थे। एक दुश्चरित दैत्य के यहां रही हुई रानी को यदि राजा स्वीकार कर ले तो प्रजा भी उसीका अनुकरण क्यों न करे? इसी अनुचित अनुकरण से प्रजा को बचाने और लोकापवाद से बचने के लिए, रामचन्द्र ने सीता त्याग किया। इसमें उनके चरित की उत्कर्षता है। फिर, रामचन्द्र, अर्जुन, भीष्म आदि महात्माओं के चरित, इस समय, अनेक विषयों में मनुष्यातिग और अलौकिक जान पड़ते हैं। अतएव उनके चरित का अनुकरण चौदहवीं अथवा बीसवीं शताब्दी के मनुष्यों में कहां तक सम्भव है, यह सोचने की बात है। जिसके चरित का चित्र कवि उतारता है उसके समय का उसे अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

राजा लक्ष्मणसिंह ने देववाणी सुनी कि यदि उसके १२ बेटे युद्ध में मारे जायँ; और यदि वह अपनी कन्या का बलिदान भी दे तो चित्तौर का राज्य मुसलमानों के द्वारा छीने जाने से बचै। ख़ैर, बेटों के मारे जाने की बात तो बहुत नहीं खटकती; परन्तु कन्या के बलिदान की बात नितान्त अमानुषी है। वह "देववाणी" से तो क्या दैत्यवाणी से भी न निकलैगी। जिन स्त्रियों की प्राणातिरिक्त रक्षा करना हिन्दुओं का परम धर्म्म है, उन को बलि! फिर चौदहवें शतक में देववाणी का होना बिलकुल ही देश-काल-विरुद्ध है। स्वप्न होता तो ख़ैर सम्भव भी माना जा सकता था। नाटक में तद्गत पात्रों के चरित का चित्र होता है; जो घटनायें सम्भव हैं उन्हींको स्थान दिया जाता है। अमानुषी और असंभाव्य घटनायें नाटक में नहीं वर्णन की जातीं। यदि लक्ष्मणसिंह और सरोजिनी कोई पौराणिक व्यक्ति होते तो देववाणी का होना मार्जनीय भी माना जा सकता था। हम नहीं जानते, क्या समझ कर, बाबू ज्योतिरिन्द्रनाथ ने, इस अघटित घटना का उल्लेख किया। राजस्थान में कुछ ऐसा ही अवश्य लिखा है; परन्तु किसी स्त्री के बलिदान की बात वहां भी नहीं है।

रामचन्द्र ने प्रजारञ्जन के विचार से जानकी को छोड़ा था। परन्तु उन्होंने उन को मारा नहीं; मारने का विचार तक नहीं किया; केवल वन में उन को छोड़ दिया। यहां लक्ष्मणसिंह अपनी कन्या सरोजनी की बलि देने पर राज़ी ही नहीं हुए; किन्तु, यदि, विजयसिंह बलिस्थल में सहसा न आ जाता, तो वह कन्या लक्ष्मणसिंह के उपस्थित रहते काट भी डाली जाती। ऐसी घटना मनुष्य-

चरित के सर्वथा विरुद्ध है। इसके लिए प्रजा का भी विशेष दबाव न था। चित्तौर राज्य की सारी प्रजा ने लक्ष्मणसिंह से कभी नहीं कहा, कि तुम अपनी कन्या को काट कर राज्य को मुसलमानों से बचाओ। अपनी सेना और अपनी राजधानी के राजपूतों का रञ्जन करना प्रजारञ्जन नहीं कहलाता। अतएव रामचन्द्र के चरित से यदि लक्ष्मणसिंह के इस चरित की समता भी की जाय तो भी लक्ष्मणसिंह का अपकर्ष ही सूचित होता है।

सरोजिनी नाटक में अनेक दोष हैं। परन्तु, इस जगह, वे नहीं दिखलाये जा सकते।

हमको विश्वास है कि "सरोजिनी नाटक" का हिन्दी अनुवाद क्षत्रियों की अपकीर्ति को फैलाने के इरादे से नहीं प्रकाशित किया गया। इसके प्रकाशन का अभिप्राय साहित्यप्रेम और धनोपार्जन ही जान पड़ता है। इस कार्य में साहित्य प्रेम यदि ५ अंश माना जाय तो धनोपार्जन की इच्छा ९५ अंश माननी चाहिए। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले ही इसके प्रकाशक "अश्रुमती" नामक एक पुस्तक को फेक चुके थे। उसमें भी क्षत्रियों के चरित का अपकर्ष-वर्णन था। अतएव "सरोजिनी नाटक" की आक्षेपयोग्य बातें, और उसके दोष, यदि प्रकाशक के ध्यान में आते तो वे उसे शायद कभी न प्रकाशित करते। अतएव जान बूझ कर क्षत्रियों को मनस्ताप पहुँचाने का दोष उन पर नहीं आ सकता।

भारतजीवन में "सरोजिनी" की एक ही आवृत्ति छपी है। इस आवृत्ति की १००० प्रतियों में से इस समय कोई ७०० प्रतियां शेष हैं। हमारी समझ में, इस पुस्तक का प्रचार इस रूप में न होना चाहिए। राना लक्ष्मणसिंह क्षत्रिय नरेश थे; ऐतिहासिक वीर पुरुष थे। उनके चरित का क्षत्रियोचित चित्र इस नाटक में नहीं उतारा गया है। सर्व-साधारण की सम्मति के अनुरोध से, क्षत्रियों को आन्तरिक पीड़ा न पहुंचाने की इच्छा से, अपने हृदय की विशुद्धता को व्यक्त करके दिखलाने के इरादे से, इसके प्रकाशक ने "अश्रुमती" के सिवा "चित्तौर-चातकिनी" नाम की एक और पुस्तक को भी गङ्गाप्रवाह किया है। "सरोजिनी" भी दूषित है; और वह जल-निमज्जन योग्य है। परन्तु दो पुस्तकों को फेंक कर जो पुरुष अपनी असावधानता का इतना बड़ा प्रायश्चित्त कर चुका है उस पर फिर वही दण्ड करना बड़ी कठोरता का काम होगा। वही अपराध बार बार करने पर दण्ड की मात्रा का अधिक होना सर्वथा न्याय्य माना जाता है। परन्तु यह अपराध जान बूझकर नहीं किया गया है। जान पड़ता है, कि यह केवल असावधानता, अनवधानता, अथवा मतभेद का फल है। जिस वस्तु को हम दूषित समझते हैं उसे, सम्भव है, दूसरा बिल्कुल निर्दोष मानै। अतएव यद्यपि "सरोजिनी" सदोष है, हम उसके नाश किये जाने की सम्मति नहीं देते। उसकी जितनी प्रतियां बची हैं उनकी भूमिका यदि फिर से लिखी जाय, और उसमें यह सूचना दे दी जाय, कि "सरोजिनी" के बलिदान से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी घटनायें हैं सब कल्पित हैं; यथार्थतः उनसे और लक्ष्मणसिंह या उनकी रानी से, कोई सम्बन्ध नहीं,—तो इस पुस्तक की आक्षेपयोग्य बातों का बहुत कुछ समाधान हो जाय। अथवा, एक अलग काग़ज़ पर इस विषय की एक टिप्पणी यदि पुस्तक के आरम्भ में लगा दी जाय तो भी मतलब निकल जायगा।

परन्तु यदि यह पुस्तक दुबारा छपै, तो इसमें आक्षेपयोग्य बातों को निकाल देना चाहिए। सरोजिनी के बलिदान में लक्ष्मणसिंह की सम्मति को निकाल देने से रानी को पति की निर्भर्त्सना करने की आवश्यकता भी न रहैगी; और उसके साथ ही राना का असत्य-भाषण, सेना के बिगड़ने का भय, सरोजिनी को मरने के लिए उद्यत करने का यत्न-इत्यादि बातों की अपेक्षा भी न रहैगी। जैसे भैरवाचार्य्य छद्मवेशी मुसलमान था, वैसे ही यदि कुछ मुसलमान छद्मवेश में राना की सेना में भरती हो जायँ और वे किसी कपट से

सरोजिनी की बलि देने की योजना करें, तो इस नाटक के दोष दूर हो जायँ; और इसकी घटना का यह अंश कुछ कुछ "मालती-माधव" नाटक की उस घटना के अनुसार हो जाय, जिसके द्वारा कपालकुण्डला और अघोरघण्ट के कपट द्वारा मालती के मारे जाने की योजना हुई थी। इस प्रकार के परिवर्तन से पुस्तक को प्रायः फिर से लिखना पड़ेगा। इतना परिश्रम उठाने अथवा न उठाने का विचार इसके प्रकाशक को करना होगा। परन्तु हमारा मत है, कि बिना इस परिवर्तन के "सरोजिन नाटक" पुनर्वार हिन्दी में न प्रकाशित किया जाय। पुनश्च।

बाबू श्यामसुन्दरदास के लिखने पर हमने यह सम्मति उनके पास भेजी। इस पर हमसे और अकेलेउनसे पत्र व्यवहार हुआ; बाबू राधाकृष्णदास से और हमसे कुछ भी लिखा पढ़ी नहीं हुई। बाबू श्यामसुन्दरदास हमारे सम्मति-सम्बन्धी लेख से, एक आध अंश को छोड़ कर, सहमत हुए; परन्तु हमारे निर्णय से वे सहमत न हुए। इसी लिए आपने और बाबू राधाकृष्णदास ने अपनी सम्मति अलग लिख भेजी है। उसे भी हम सरस्वती के पढ़नेवालों के जानने के लिए नीचे प्रकाशित करते हैं।

पूर्वोक्त बाबू साहबों की सम्मति से हमारे सह-मत न होने के कई कारण हैं—

१—सरोजिनी अनुवादों में है। उसके ८६ पृष्ठ फेर फार करने की अनुमति यदि मूल ग्रन्थकार न दें तो तद्विषयक निर्णय व्यर्थ हो जाय।

२ सरोजिनी के वध से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं को भूमिका या अतिरिक्त पत्र में "कल्पित" कह देने से पुस्तक के प्रायः सभी दोषों का निरसन हो जाता है। परन्तु यह बात ८६ पृष्ठों में संशोधन करने से भी नहीं होती। संशोधित पाठ में देववाणी का होना पूर्ववत् रक्खा गया है। इसके सिवा हमारी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार संशोधित पाठ में अभी और भी कितने ही दोष हैं। उदाहरण के लिए—लक्ष्मणसिंह जब प्रत्यक्ष देवी (बनावटी) के सामने खड़े थे तब तो देववाणी पर उनको कोई सन्देह नहीं हुआ; परन्तु पीछे से, अपने स्थान पर जाने के अनन्तर, उस विषय में उनको सन्देह हो आया।

३—जिस पुस्तक में १८५ पृष्ठ हैं, उसके सिर्फ ८६ पृष्ठों में, सो भी किसी किसी पृष्ठ में बहुत ही कम, संशोधन होने से उसका काया पलट होना नहीं कहा जा सकता। कायापलट के अर्थ का विचार करने से यह बात तत्काल ध्यान में आ जाती है। फिर इसका प्रमाण ही क्या है कि इस काया-पलट के कारण सरोजिनी की बिक्री बढ़ जायगी। यदि न बढ़ी तो सरोजिनी की सदोषता भी बनी रही और प्रकाशक को खर्च भी व्यर्थ करना पड़ा।

४—किसी विषय के निर्णय में विद्यमान वस्तुओं के ही आधार पर कुछ कहना उचित होता है। भविष्यत् की सम्भावनाओं को परिणत हुआ समझ कर निर्णय करना विधिविपरीत बात है। सरोजिनी की बिक्री के बढ़ने की सम्भावना और मूल ग्रन्थ-कार की अनुमति लेने के पहले ही संशोधन करने का निर्णय कर देना भविष्यत् की बातों को गृहीत मान लेना है। तथापि हम यह स्वीकार करते हैं कि यदि इन ८६ पृष्ठों में संशोधन हो जायगा तो पुस्तक की सदोषता कम अवश्य हो जायगी; परन्तु निर्दोषता उसे न प्राप्त हो सकैगी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

बाबू श्यामसुन्दरदास और बाबू राधाकृष्णदास की सम्मति नीचे लिखे अनुसार है—

कई मास हुए राजपूत और भारतजीवन के सम्पादकों में सरोजिनी की सदोषिता और निर्दो-षिता के विषय में परस्पर विवाद चला था। अन्त में दोनों महाशयों ने पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और हम दोनों को इस विषय का निर्णय करने के लिये पञ्च नियत किया। हम लोगों ने दोनो पक्षों के वक्तव्य पर पूरा ध्यान दिया और सरोजिनी नाटक को आदि से अन्त तक पढ़ा और इस सम्बन्ध में पण्डित महावीरप्रसाद

द्विवेदी से पत्र व्यवहार किया। उन्होंने कृपाकर अपनी सम्मति लिख कर हम लोगों के पास भेज दी पर हम लोग उस से सहमत न हुए। हम लोगों ने पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के। अपनी सम्मति भी लिख भेजी ग्रैर इस बात की इच्छा प्रगट की कि यदि तीनों पक्षों की एक ही सम्मति हो तो अच्छा है, परन्तु हम लोगों के मुख्य निर्णय से वे सहमत न हो सके। इस लिये अब हम लोग अपनी सम्मति अलग लिख कर देते हैं।

हम लोग इस बात के। स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ने जान बूझ कर राजपूतों की अपकीर्ति के लिये इस ग्रन्थ के। नहीं प्रकाशित किया। जो घटनायें इसमें वर्णित हैं उनकी ऐतिहासिक सत्यता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। ग्रन्थकर्ता ने अपनी कल्पना से बहुत सी बातें जोड़ दी हैं जिनसे राजा लक्ष्मणसिंह पर व्यर्थ के दोष आरोपित होते हैं। अतएव हम लोग यह निर्णय करते हैं कि यह ग्रन्थ सदोष है ग्रैर इस रूप में इसका प्रचार होना उचित नहीं है।

इसके दोषों के। दूर करने के दोही उपायें हैं। एक तो यह कि इस नाटक में जिन जिन ऐतिहासिक व्यक्तियों ग्रैर स्थानों का नाम आया है उनके स्थान पर कल्पित नाम रख दिए जायँ। दूसरा उपाय यह है कि नाटक जहां तहां बदल दिया जाय जिससे उसमें की आक्षेपयोग्य बातें निकल जायँ।

पहिले उपाय से यद्यपि ऐतिहासिक व्यक्तियों की मुक्ति हो जायगी, परन्तु एक क्षत्रिय राजा पर जो दोष इसमें वर्तमान हैं वे बने रहेंगे, इस लिये हम लोगों की सम्मति है कि दूसरे उपाय का अवलम्बन किया जाय। इस नाटक में किन किन स्थानों पर परिवर्तन होना चाहिए यह हम लोगों ने एक प्रति में बना दिया है। इस संशोधन के करने में ८६ पृष्ठों के। पुनः छापना पड़ेगा। जहां तक हम लोगों के। ज्ञात है बाबू रामकृष्ण वर्म्मा ने सब बाकी बची पुस्तकों की जल्द नहीं बँधवाई है, अतएव इसके करने में विशेष कष्ट न होगा। हां, ८६ पृष्ठों के पुनः छापने का व्यय उन्हें उठाना पड़ेगा। परन्तु नाटक के कायापलट हो जाने से लोग उस संशोधित संस्करण के देखने की इच्छा करेंगे जिससे आशा है कि बाबू रामकृष्ण वर्म्मा के। जो व्यय ८६ पृष्ठों के पुनः छापने में पड़ेगा वह पुस्तकों की अधिक बिक्री से पूरा हो जायगा। इसलिये हम लोग यह निर्णय करते हैं कि हम लोगों के किए हुए संशोधनों के अनुसार यह पुस्तक ठीक करके तब बेची जाय, अन्यथा नहीं।

संशोधित प्रति हम लोग राजपूत पत्र के सम्पादक के पास इस निर्णय के साथ भेजते हैं। उसे वे देख कर बाबू रामकृष्ण वर्म्मा के पास भेज दें ग्रैर यदि दोनों पक्षों के। हम दोनों आदमियों का निर्णय स्वीकार हो तो उसके अनुसार बाबू रामकृष्ण वर्म्मा सरोजिनी का संशोधन कर डालें।

इस निर्णय की एक प्रति पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बाबू रामकृष्ण वर्म्मा के पास भी हम लोग भेजते हैं।

श्रीराधाकृष्णदास। श्यामसुन्दरदास।

मि० जमशेदजी नसरवानजी ताता।

यह हमारा ही नहीं, किन्तु सारे देश का दुर्भाग्य है कि, आज हमें अपने देश के एक अलैाकिक हितकर्ता की मृत्यु का समाचार सरस्वती के पाठकों के। सुनाने के लिए लेखनी उठाना पड़ी है! ताता की मृत्यु से हमारे देश के व्यापारियों ने अपने एक राजा ही के। नहीं खो दिया, किन्तु हमारे शिक्षित भाइयों ने अपने एक सच्चे मित्र के। ग्रैर हमारे धनवान लोगों ने अपने एक आदर्श नर-रत्न के। खो दिया! हम तो यही समझते हैं कि इस समय भारत के सैाभाग्य-मन्दिर का सुवर्ण-कलश यकायक टूट पड़ा, अथवा आर्यावर्त की कीर्तिकैामुदी के। प्रकाशित करनेवाला देदीप्यमान चन्द्र अस्त हो गया! हा, दुर्दैवी भारत, तेरी यह क्या दशा हो रही है!!!

दानवीर जमसेटजी नौशेरवानजी ताता ।

सरस्वती के प्रथम वर्ष की ११वीं संख्या में ताता के दानों के सम्बन्ध में एक लेख लिखा गया है। दान देने के सिवा ताता में ग्रोर भी अनेक अनुकरण करने योग्य गुण थे जिनका उल्लेख होना आवश्यक है। यदि वे केवल एक बड़े व्यापारी वा महादानी ही होते तो उनका नाम उतना प्रसिद्ध न होता कि जितना वह इस समय है। धन का व्यय, उपभोग ग्रोर दानधर्म में तो सभी हिन्दुस्तानी थोड़ा बहुत किया करते हैं; परन्तु मि० ताता ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग भिन्न रीति से किया। इसीलिये उनका चरित्र सब लोगों के पढ़ने योग्य है। वह यथार्थ में शिक्षा-पूर्ण है। यद्यपि उनके सम्बन्ध की कुछ कुछ बातें प्रायः सब अंग्रेज़ी ग्रोर देशीभाषाओं के समाचारपत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं; तथापि उनको बारबार प्रकाशित करने ग्रोर उनपर बार बार विचार करने से उनमें एक प्रकार का नूतन महत्व आ जाता है। यही समझकर हम भी ताता के घटना-मय जीवन के सम्बन्ध में नीचे लिखी हुई कुछ विशेष बातों पर ध्यान देने के लिये पाठकों से निवेदन करते हैं। हम जानते हैं कि समाचार पत्रों तथा मासिक-पुस्तकों में प्रकाशित होनेवाली इन अपूर्ण बातों से लोगों की जिज्ञासा कदापि तृप्त नहीं हो सकती। जब ताता की बृहत् जीवनी प्रकाशित होगी तभी लोगों को पूर्ण शिक्षा प्राप्त होकर कुछ लाभ होगा। अस्तु।

जन्म, बाल्यावस्था ग्रोर शिक्षा।

गुजरात में नवसारी एक प्रसिद्ध स्थान है। वहीं सन् १९३९ ई० में जमशेदजी का जन्म हुआ था। जब उनकी उमर तेरह वर्ष की हुई तब वे बम्बई को गये ग्रोर वहां उन्होंने विद्याभ्यास किया। वह तीन चार वर्ष तक एल्फ़िन्स्टन कालेज में भी पढ़ते थे। परन्तु कालेज की नियत पुस्तकों की शिक्षा से व्यापार के व्यवहारिक ज्ञान को उत्तम समझकर वह उन्नीसहो वर्ष की उमर से अपने पिता सेठ नसरवानजी के आफ़िस में काम करने लगे। इसमें सन्देह नहीं कि व्यापार ही किसी देश के अस्तित्व का एक मुख्य आधार है। अंग्रेज़ों ने व्यापार ही के भरोसे भारतवर्ष का विस्तीर्ण राज्य प्राप्त किया है। व्यापार ही के बल पर अमेरिका बसाई गई है; ग्रोर इन दिनों व्यापार ही की शक्ति पर जापान उन्नति के शिखर पर जा पहुंचा है। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि "लक्ष्मी का निवास व्यापार में है।"

व्यापार में प्रवेश।

आज कल बहुतेरे लोग इस देश का माल परदेश को भेजकर, ग्रोर परदेश का माल यहां लाकर धनी बन जाते हैं; परन्तु उनमें से कोई भी इस बात को नहीं सोचते कि अपने देश की अर्थोत्पादक-शक्ति किन उपायों से बढ़ेगी। ताता की असाधारण बुद्धि का यही एक बड़ा भारी प्रमाण है (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है तो) कि, उन्होंने इस देश की आर्थिक अवनति के कारणों की उचित चिकित्सा करके उसकी उन्नति का उद्योग किया। उनका यह उद्योग हमारे राजाओं ग्रोर महाराजाओं के लिए आदर्श के समान है; क्योंकि इन्हीं लोगों के पास कुछ सम्पत्ति है। यदि वे अपनी सम्पत्ति का उपयोग, ताता की तरह, देशहित के कामों में करें तो निस्सन्देह एक दिन हम लोगों की गणना दुनियां के सभ्य देशों में होने लगेगी। विदेशियों ने वैज्ञानिक रीतियों का अवलम्ब कर व्यापार में बहुत उन्नति की है। इसलिए उन बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ताता ने इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इटाली, अमेरिका, जापान आदि देशों में कई बार प्रवास किया। भारत के व्यापार का चीन से विशेष सम्बन्ध देखकर उन्होंने वहां "ताता कम्पनी" नामकी एक दूकान खोली जिसकी शाखायें जापान, हांगकांग, शंघाई, पारिस ग्रोर न्यूयार्क में भी हैं। उन्होंने अपनी बुद्धि की कुशाग्रता से व्यापार में अगणित सम्पत्ति प्राप्त की।

मिल (पुतली घर) का उद्योग।

मि० ताता में यह एक बड़ा अपूर्व गुण था कि वह जब कोई काम करते थे तब पहले स्वयं उसकी पूरी पूरी जांच कर लेते थे। जब उनका ध्यान मिल के उद्योग की ओर लगा, तब वह स्वयं लङ्काशायर को गये, और वहां कुछ काल तक रहकर उन्होंने मिलोंके सम्बन्ध में सब आवश्यक बातों का ज्ञान बड़ी निपुणता से प्राप्त कर लिया। यहां लौटकर उन्होंने इस बात की जाँच की कि मिल के योग्य स्थान कौनसा है। बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान में प्रवास करने के बाद उन्होंने नागपुर को पसन्द किया और वहीं सन् १८७७ ई० में अपनी "एम्प्रेस-मिल" खोल दी। इससे पहले भी उन्होंने बम्बई में मिल का उद्योग किया था और इसके बाद भी उन्होंने कई मिलें खोलीं, परन्तु नागपुर की एम्प्रेस मिल ही सबसे अधिक उन्नति पर है। मि० ताता योग्य कर्मचारियों को नियुक्त करने में बड़े प्रवीण थे। थोड़े ही समय में एम्प्रेस मिल ने ऐसी सफलता प्राप्त की कि उसके हाते में दो नई मिलें और खोलनी पड़ीं। इस समय लोगों के चित्त में इस मिल की प्रामाणिकता इतनी बढ़ी हुई है कि ५००) रु० का एक शेअर (हिस्सा) १५००) रु० में भी नहीं मिलता। यथार्थ में यह भारतवर्ष की एक अद्वितीय मिल है; और मि० ताता भारतवर्ष में मिल के उद्योग के मार्गदर्शक हैं।

हिन्दुस्तान में कपास की खेती।

देशहित की चिन्ता करनेवालों का ध्यान अपने देश की आर्थिक त्रुटियों को दूर करने में ही लगा रहता है। इस देश में विलायती माल बहुत आता है। इससे लोगों की रुचि बारीक कपड़ों की ओर बढ़ती जाती है। यह देख, मि० ताता ने अपनी मिलों में भी बारीक कपड़ा बुनवाने का उद्योग किया। परन्तु हिन्दुस्तान में लम्बे धागे की कपास, जिससे महीन कपड़ा बुना जाता है, नहीं होती। इस विषय में सरकारी आफ़िसरों की यह राय थी कि इस देश में लम्बे धागे की रुई नहीं उत्पन्न हो सकती इस राय को ताता ने पसन्द नहीं किया। वह स्वयं मिसर देश को गये; और वहां रहकर उन्होंने उस देश की प्रसिद्ध कपास की खेती के सम्बन्ध में सब आवश्यक बातों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहां लौटकर उन्होंने सिन्ध और मैसूर में सैकड़ों एकड़ ज़मीन ली और उसमें मिसर देश की कपास की खेती करके यह बात सिद्ध कर दी कि अनुकूल परिस्थिति में खेती करने से अवश्य लाभ होगा। मि० ताता के कहने से नागपुर के सरकारी खेतों में भी मिसर देश की कपास परीक्षा के लिये बोई गई थी। इसमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई। यदि हमारे बड़े बड़े ज़मींदार, मालगुज़ार और किसान इस कपास को बोने का उद्योग करें तो अवश्य उन्हें लाभ हो।

भारतवर्ष में लोहे का उद्योग।

भारतवर्ष में, विशेषतः मध्यप्रदेश में, लोहे की खानें बहुत हैं। देशी कोयले की खानें भी उन्हींके आस पास के प्रान्तों में पाई जाती हैं। मि० ताता ने प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्र वेत्ताओं से चन्द्रपुर, भण्डारा, बिलासपुर, लोहारा आदि अनेक खानों में उन खानों की, वैज्ञानिक रीति से, परीक्षा करवाई। यह काम अब तक जारी है। इसमें लगभग दो तीन लाख रुपये ख़र्च हो गये हैं। परीक्षा से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इन खानों में शुद्ध लोहा ६३ से ७० सैकड़ा तक निकलता है। उनमें से प्रति दिन १५० टन लोहा निकाला जा सकता है। मेजर मेहान ने अनुमान किया है कि सिर्फ़ लोहारा की खानों से कम से कम दो लाख टन लोहा निकलेगा; और यदि इन खानों की तहें भूगर्भ में बहुत दूर तक गई होंगी तो उनमें से २० करोड़ टन लोहा निकल सकेगा। खेद की बात है कि हमारी गवर्नमेण्ट ने ऐसे देशोपकारी उद्योग में मि० ताता को कुछ भी सहायता नहीं दी! जब मि० ताता अपने लोहे के उद्योग के सम्बन्ध में वैज्ञानिक रीतियों का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु अमेरिका को गये थे तब वहां के मार्गन, लॉटर आदि लोहे के बड़े बड़े

व्यापारियों को यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ कि हिन्दुस्तान की गवर्नमेण्ट ने कुछ भी सहायता नहीं दी !! अब तो हमारे देश के दुर्भाग्य से इस उद्योग के पुरस्कर्ता मि० ताता ही स्वयं चल बसे !!! इनके पश्चात् इस उद्योग की क्या दशा होगी सो हम नहीं कह सकते।

रिसर्च युनीवर्सिटी।

शिक्षा की उन्नति के लिए, इस देश में, मि० ताता के समान और किसीने उद्योग नहीं किया। उन्होंने ३० लाख की जायदाद गवर्नमेण्ट को सौंप दी है। उद्देश्य यह है कि उससे एक ऐसा विश्व-विद्यालय खोला जाय कि जहां इस देश के शिक्षित लोग वैज्ञानिक आविष्कारों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इस विद्यालय की रचना कैसी होगी, उसमें कौन कौन से विषयों की शिक्षा दी जायगी इत्यादि बातों का विवरण सरस्वती के प्रथम भाग की ११वीं संख्या में प्रकाशित हो चुका है। इस विषय की चर्चा बहुत दिनों से समाचार पत्रों में हो रही है। अतएव यहां विस्तार सहित लिखने की आवश्यकता नहीं है। इतने दिन बीत जाने पर भी गवर्नमेण्ट ने ने अब तक इस विश्वविद्यालय के लिये कोई क़ानून न बनाया। इससे लोगों के मन में शङ्का होने लगी कि गवर्नमेण्ट इस कार्य में कुछ सहानया नहीं देगी। हर्ष की बात है कि हाल ही में बम्बई की गवर्नमेण्ट ने लोगों की शङ्का का समाधान किया है, और यह प्रगट किया है कि इस विषय का क़ानून शीघ्र ही बना दिया जायगा।

अन्तिम दिन।

मि० ताता ने अपने व्यापार के बल पर ऐसे उत्तम उत्तम देशहित के कार्य किये हैं कि उनका केवल उल्लेख भी इस छोटे से निबन्ध में नहीं हो सकता। कुछ दिनों से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। इसलिए डाकृरों की सलाह से वे गत जनवरी मास में मिसर देश को गये थे। केरो शहर में कुछ दिनों तक रहकर वे नेपल्स को गये। वहां से योरप के अन्यान्य शहरों में प्रवास करते हुए वे विएन्ना पहुँचे और वहां डाकृरों का इलाज शुरू किया। उन्होंने अपने गृहवैद्य डाकृर राव को भी वहां बुलवा लिया था। उनकी शक्ति दिन प्रति दिन क्षीण होने लगी तब इनको जर्मनी के नौहोम गांव में ले गये। वहीं ता० १९ मई को उनका देहान्त हो गया! हिन्दुस्तान में इस ख़बर के पहुंचते ही हाहाकार होने लगा। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे, यही हमारी आन्तिरिक प्रार्थना है।

माधवराव सप्रे।

विनोद और आख्यायिका।

सुनते हैं, जब न्यूटन अपने कमरे में बैठ कर किसी गम्भीर विषय पर लिखा पढ़ी किया करता था, तब वह उसका द्वार बन्द कर लिया करता था। उस समय कभी कभी उसकी पाली हुई बिल्ली वहां आती और किवाड़ को धक्का देकर उसकी विचार परम्परा को नष्ट कर दिया करती थी। इस आपत्ति से बचने के लिये न्यूटन ने एक दिन एक बढ़ई को बुलाकर कहा कि हमारे कमरे के किवाड़ में एक बड़ा और एक छोटा ऐसे दो छेद बना दे। बढ़ई ने पूछा आप दो छेद क्यों बनवाते हैं? आपने उत्तर में कहा, बड़े छेद से बिल्ली मेरे कमरे में आया करेगी, और छोटे में से उसका बच्चा आया करेगा। बढ़ई ने कहा कि क्या बड़े छेद से उसका बच्चा आपके कमरे में नहीं आ सकेगा? यह सुनकर न्यूटन ने कहा कि न जाने क्यों यह बात मुझे नहीं सूझी! जान पड़ता है गहन विषयों में निमग्न होनेवाले पुरुष ऐसे ऐसे क्षुद्र विषयों का विचार ही नहीं कर सकते।

पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री।

मनोरञ्जक श्लोक।

रत्नाकरो हि भवनं गृहिणी च पद्मा
देयं किमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसोऽस्ति दैन्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥

रत्नाकर (समुद्र) ही आपका घर है। लक्ष्मी गृहणी हैं। हे जगदीश्वर! तब हम आपको क्या दें। हाँ ? एक बात की कमी आपको है। अर्थात् राधा ने आपका मन लेलिया है। इससे आप मनोहीन हैं। अतः हे प्रभो! मैं अपना मन आपको अर्पण करता हूं, उसे ग्रहण कीजिये।

✽

क्षीरसारमपहृत्य शङ्कया
स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्ततामसे,
नन्दनन्दन! कुतो न लीयसे ॥

हे कृष्ण! तुम यदि नवनीत (मक्खन) चुराकर, डर से, भग कर कहीं छिपना चाहते हो, तो अत्यन्त तमोगुण (अन्धकार) से भरे हुए मेरे मन में क्यों नहीं छिप जाते ?

✽

साधारणतरुबुद्धया न मया
रचितस्तवालवालोऽपि।
लज्जयसि मामिदानीं चम्पक!
भवनानि वासयन् कुसुमैः ॥

हे चम्पक वृक्ष! साधारण पेड़ जान मैंने तेरी थाला भी न बनाया; किन्तु, इस समय, तू अपने फूलों के आमोद से सारे घर को सुवासित करता हुआ मुझे नितान्त लज्जित कर रहा है ॥

✽

खे चरन्निशि तमः प्रशान्तये
ज्योतिरिङ्गण! कथं न लज्जसे।
इत्थमेव बहु किं न मन्यसे
यत्त्वमेव तिमिरेषु लक्ष्यसे ?

अरे खद्योत (जुगनू)! अन्धकार नाश करने के लिये रात के आकाश में घूमते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? उस अन्धेरे में जो तू लोगों को सूझ पड़ता है, इसीको तू क्यों नहीं बहुत समझता ?

पण्डित जनार्दन झा।

✽

साक्षी ममास्ति नियतं परमेश्वरस्तु
कस्यापि नैव हृदयं व्यथयामि नूनम्।
ईर्षापरः स्वयमथ व्यथते सदा यत्
तत्तस्य हि प्रकृतिरेव न मे स दोषः॥

हमारा ईश्वर साक्षी है; हम कभी किसीके हृदय को व्यथा नहीं पहुँचाते। ईर्षालु मनुष्य जो, आपही आप, अपने मन में व्यथित होता है वह उसका स्वभाव ही है; उसमें हमारा क्या दोष ? ठीक ऐसी ही एक उक्ति शेख़ सादी ने, फ़ारसी में, कही है—

توانم آنکه نیازارم اندرون کسے
حسود را چه کنم کوز خود به رنج دراست

[तवानम आँकि नयाज़ारम अन्दरून कसे।
हसूद रा चि कुनम कोज़ि ख़ुद बरञ्ज दरस्त ॥]

अर्थात् मैं किसीके अन्तःकरण को दुःख नहीं पहुँचाना चाहता; परन्तु मत्सरवान् मनुष्य को मैं क्या करूं ? वह स्वयं ही रञ्जीदा हुआ करता है।

प्राप्ति-स्वीकार।

नाम।	भेजनेवाले।
१—रामकृष्ण परमहंस का चरित	स्वामी विज्ञानानन्द
२—प्रेमशतक ३—शोकाश्रु	गोस्वामि गोवर्द्धनलाल
४—त्रैभाषिक-व्याकरण शब्दावली	पण्डित ब्रजवल्लभ मिश्र

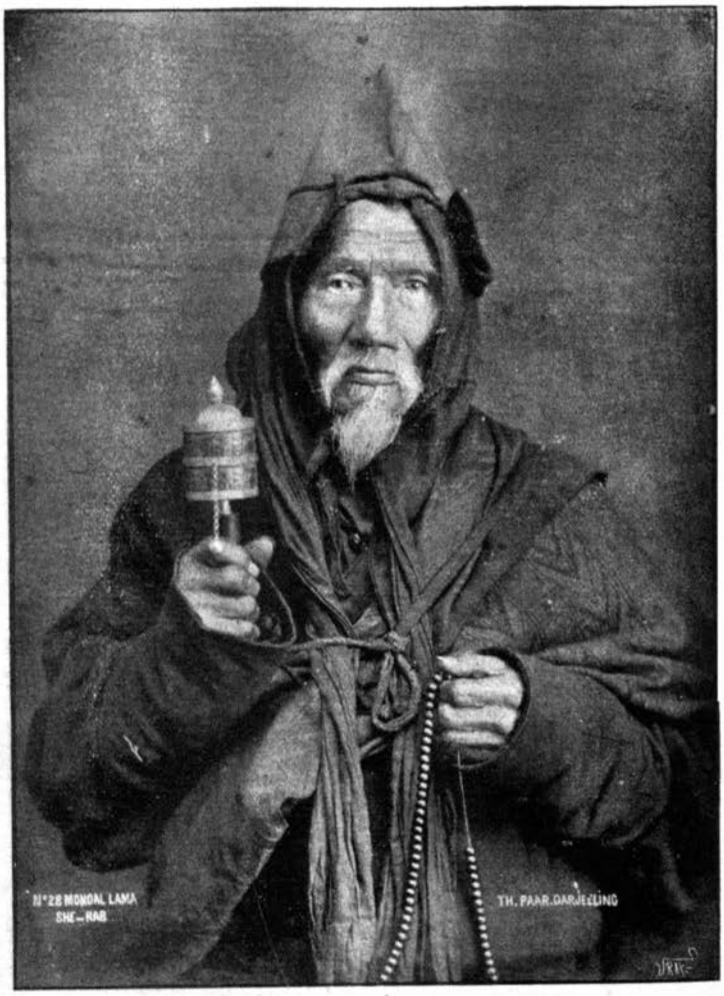

एक तिब्बती लामा।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५] जुलाई, १९०४ [संख्या ७

जनरल्ल कुरोपाटकिन।

कुरोपाटकिन का नाम हमारे देशवाशियों में से पहले प्रायः बहुत कम लोग जानते रहे होंगे। परन्तु जब से रूस श्रार जापान का युद्ध छिड़ा है तब से जनरल्ल कुरोपाटकिन का नाम सब को ज़बान पर है। आपने अमानुषी वीरता के काम किये हैं; आप साहस श्रार शौर्य्य की मूर्त्ति हैं; बल में आप भीमकाय भीम के समान हैं। आप के सेना-नायकत्व की बहुत बड़ी शोहरत है। परन्तु ऐसे विश्व-विख्यात वीर के द्वारा संचालित सेना को खर्वाकार भतखैावे जापानी पराजय पर पराजय देते चले जा रहे हैं। रूस की समग्र स्थलसेना का नायकत्व स्वीकार करके उसको पुनः पुनः परास्त होते देख कुरोपाटकिन अपने मन में क्या कहते होंगे यह नहीं जान सकते हैं। क्या पीत-वर्ण जापानी कुरोपाटकिन के पूर्वसञ्चित यश को बिलकुल ही काला कर देंगे?

कुरोपाटकिन मशहूर योद्धा हैं। युद्ध करना उनको बहुत प्रिय है। युद्ध उनके लिये दिलबहलाव की चीज़ है। जैसे जैसे वे अपनी इस युद्धप्रियता को बढ़ाते जाते हैं, तैसे ही तैसे रूस की राजसत्ता भी एशिया में बढ़ती जाती है। कुरोपाटकिन ने रूस को क्रम क्रम से उन्नत होते देखा है; श्रार अपने भुजबल से उन्होंने उसके विस्तार को बढ़ाया है। बोख़ारा श्रार ताशकन्द के आसपास कुरोपाटकिन ने पहले पहल अपनी युद्धप्रियता की चाशनी चखी। उस समय उनकी उमर बहुत कम थी। वे सब-लफ्टिनेण्ट थे। परन्तु तात्कालिक युद्ध में उन्होंने आश्चर्यकारिणी वीरता दिखलाई। इस लिए युद्ध के अन्त में दो तमगों ने उनके हृदयस्थल की शोभा बढ़ाई। साथही उनके पद को भी उन्नति हो गई। वे पूरे लफ्टिनेण्ट हुए।

कुरोपाटकिन के रणकौशल को देखकर उनके सेनानायकों ने उनकी बड़ी तारीफ़ की। उन्होंने

सिफ़ारिश करके उन्हें अन्य देशों में युद्धविद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भिजवाया। पहले वे बर्लिन के गये; फिर पेरिस को। पेरिस में फ़्रांस की घुड़सवार सेना के सुधार में कुरोपाटकिन ने बहुत सहायता की। इससे मारशल मकमोहन उन पर बहुत प्रसन्न हुए और "लीजियन आफ़ आनर" (Legion of honuor) नामक पदक उनके मिला। कुरोपटकिन के पहले किसी रूसी अफ़सर को यह पदक नहीं मिला था। जिस समय फ़्रांस और प्रुशिया में युद्ध हो रहा था उस समय कुरोपाटकिन पेरिस में थे। प्रुशिया की फ़ौज ने उस समय पेरिस को घेर रक्खा था। तब कुरोपाटकिन ने बहुत तजरिवा हासिल किया। युद्धक्षेत्र में स्वयं जा कर उन्होंने युद्ध-कौशल सीखा। इस समय तक कुरोपाटकिन अल्पवयस्कही थे। वे अपनी भावी उन्नति-सम्बन्धी तरह तरह के स्वप्न देख रहे थे, कि तुर्किस्तान में लड़ाई छिड़ गई। इस लिये कुरोपाटकिन को रूस लौट जाना पड़ा। ख़ोकन्द के ख़ां से रूस लड़ा और खोकन्द सदैव के लिये रूसी तुर्किस्तान में मिला लिया गया।

इस तुर्किस्तान के युद्ध में कुरोपाटकिन की योजना जनरल स्कोबेलफ की आधीनता में हुई। वहां कुरोपाटकिन पर किसी कारण से स्कोबेलफ नाराज़ हो गये। अतएव उन्होंने कुरोपाटकिन को एक ऐसा काम सौंपा जिसे करके उनके जीते लौट आने की कोई आशा न थी। कुरोपाटकिन ने अपने जनरल की इस आज्ञा को बड़ी धीरता और बड़ी दृढ़ता से सुना। वे ज़रा भी चंचल नहीं हुए। उन्होंने उस काम के सफलतापूर्वक करके लौट आने का मनही मन प्रण किया। उनको हुकम हुआ कि वे दुशमन की फ़ौज का पता लगा लावें। इस काम के करने के लिए उन्होंने एक क़ैदी का भेष बनाया। यह करके शत्रु के दल बल का भेद लेते हुए उसकी सेना में कुछ काल तक गुप्त तौर पर उन्होंने रहना स्थिर किया। एक हफ़्ता हो गया। न कुरोपाटकिन लौटे; न उनकी कोई ख़बरही मिली। अतएव स्कोबेलफ ने समझा कि कुरोपाटकिन का भेजा जाना व्यर्थ हुआ; उनको कामयाबी नहीं हुई। यह समझ कर वे एक अन्य पुरुष को उसी काम पर भेजने का विचार कर रहे थे कि एकाएक एक ज्वर से पीड़ित, घायल और भूखे आदमी ने उनके खेमें में प्रवेश किया। यह आगन्तुक कुरोपाटकिन थे। वे अपने साथ जो काग़ज़ात लाये थे, और जिन बातों का पता उन्होंने लगाया था, वे बड़े महत्व की थीं। इस पर स्कोबेलफ को सीमातिग सन्तोष हुआ; वे अपनी पहली अप्रसन्नता को भूल गये। कुरोपाटकिन की योग्यता, साहस, बुद्धि और कौशल को देखकर वे चकित हो उठे। उस दिन से वे कुरोपाटकिन को अपना मित्र समझने लगे। उसी दिन से कुरोपाटकिन की उन्नति पर उन्नति होनी शुरू हुई। थोड़े ही समय में कुरोपाटकिन स्कोबेलफ के दाहिने बाहु हो गये और जिस जिस युद्ध में स्कोबेलफ ने सेना नायकत्व किया उस उसमें कुरोपाटकिन ने अपने रणचातुर्य्य से उनको बहुत ही खुश किया।

ताशक़न्द पर जब रूसी सेना ने क़ब्ज़ा किया तब कुरोपाटकिन वहां हाज़िर थे। जिस समय ख़ोकन्द का पतन हुआ उस समय भी वे वहीं पर थे। वे रूसी सेना के साथ ही थे जब बोख़ारा के अमीर की ४०,००० फ़ौज़ को सिर्फ़ ४,००० रूसी फ़ौज से हार खाना पड़ा। सात दिन तक बाराबर युद्ध करने पर जब रूसी फ़ौज ने संगीनों के बल खोजण्ट पर धावा किया और वहां से दुश्मन को मार भगाया तब भी कुरोपाटकिन वहां उपस्थित थे। जिस समय समरक़न्द का फाटक खोला गया और तैमूर की इतिहास-प्रसिद्ध राजधानी के भीतर रूस के ८००० सिपाही प्रवेश कर गये, उस समय भी कुरोपाटकिन वहां थे। परन्तु इन युद्धों में शामिल होना कुरोपाटकिन ने अपने लिए कोई प्रशंसा की बात नहीं समझी। ख़ीवा और मर्व में उन्होंने भीम विक्रम दिखलाया। यह करके भावी रूस और टर्की के युद्ध के लिये वे तैयार हुए। उस युद्ध में

कुरोपाटकिन ने जो वीरता दिखाई उसकी गवाही इतिहास दे रहा है।

तुर्की-युद्ध में कुरोपाटकिन ने साहस और शौर्य के ऐसे ऐसे काम किये जिनको देख कर जनरल स्कोबेलफ तक को दाँत के नीचे उँगली दबानी पड़ी। एक बार युद्ध में स्कोबेलफ के जितने शरीर रक्षक और सहकारी थे सब मारे गये; बच गये केवल कुरोपाटकिन। एक अन्य महा भीषण युद्ध में घण्टे ही भर में, ३००० रूसी कट कर ज़मीन पर गिर गये। परन्तु कुरोपाटकिन के वीर-हृदय पर इसका ज़रा भी असर नहीं हुआ। उलटा उनका उत्साह द्विगुणित हो गया। सिर्फ़ ३०० सिपाही लेकर वे तुर्कों के एक मोरचे पर टूट पड़े और उसे विजय कर लिया। परन्तु उन ३०० में से सिर्फ़ कुछ ही योद्धा जीते बचे। उन बचे हुओं में कुरोपाटकिन भी थे।

तुर्क-रूसी युद्ध में एक बार ये घायल होकर रात भर मुर्दों के बीच में पड़े रहे। लोगों ने इनको भी मुर्दा ही समझा। परन्तु दूसरे दिन ये अपने पैरों चल कर अपनी सेना में जा मिले। इनके बदन पर अनगिनत घावों के निशान हैं। इन्होंने समर-भूमि में सैकड़ों योद्धाओं को अपने हाथ से मार गिराया है।

१८ वर्ष की उमर में ये सेना में भरती हुए थे। इस समय इनकी उमर ५६ वर्ष की है। ३४ वर्ष की उमर में ये मेजर जनरल हुए थे। और अब ६ वर्ष से आप रूस के "मिनिस्टर आफ वार"—युद्ध के प्रधान मंत्री हैं। आप जापान के साथ युद्ध करने के ख़िलाफ थे और अब भी हैं। परन्तु उनकी राय नहीं मानी गई, जिसका फल, इस समय, रूस और लड़ने की राय देनेवाले उसके युद्धप्रिय सलाहकार चख रहे हैं।

कुरोपाटकिन ने जो काम किया अच्छी तरह से किया। सख़्त से सख़्त मेहनत से वे कभी नहीं डरे। भय क्या चीज़ है वे जानतेही नहीं। युद्ध से फ़ुरसत पाने पर उन्होंने एशिया के उजाड़ और रेतीले मैदानों में हज़ारों कोस दूर का सफर किया, और ऐसी ऐसी बातों का पता लगाया जिनका पता लगना औरों के द्वारा नितान्त असम्भव था। एक बार घोड़े की पीठ पर उन्होंने २,५०० मील का रास्ता तै किया। यह रास्ता ऐसे जङ्गलों के भीतर से था जो अगम्य समझे जाते थे और जहां पद पद पर असभ्य तातारियों से लड़ना भिड़ना पड़ता था। इस काम को भी उन्होने बड़ी ही योग्यता से किया। इसके अनन्तर काशग़ारिया नामक प्रदेश के ऊपर उन्होंने एक पुस्तक लिखी जो उस समय अनमोल समझी गई। उस समय तक मध्य एशिया के विषय में लोग बहुत ही कम ज्ञान रखते थे। कुरोपाटकिन की किताब से उस ज्ञान की विशेष बृद्धि हुई। उसे पढ़कर रायल जिओग्राफ़िकल सोसायटी ने कुरोपाटकिन को एक पदक प्रदान किया।

ऐसे जनरल कुरोपाटकिन को रूस के राजेश्वर ज़ार ने सुदूर पूर्ववर्ती देश में भेजी गई स्थल-गामिनी रूसी सेना का प्रधान नायक नियत किया है। युद्ध-भूमि में आपको पहुँचे बहुत दिन हुए। सेण्ट पिटर्सबर्ग से प्रस्थान करते समय, सुनते हैं, आपने अपनी पहली बहादुरी का स्मरण करके बहुत गर्वोक्तियां कही थीं। परन्तु अभी तक आप की एक भी गर्वोक्ति सत्य नहीं निकली। आपकी सेना को जापान परास्त करता चला जा रहा है; क़िले और शहर, एक के बाद दूसरा, लेता चला जा रहा है; और अपने लोकोत्तर शौर्य्य, वीर्य, तथा पराक्रम से संसार को स्थगित करते हुए सबके मुँह से निकले हुए प्रशंसा-पीयूष से अपने कर्णरन्ध्रों को आप्लावित करता चला जा रहा है।

मारकुइस ईटो।

जिस विलक्षण प्रतिभाशाली पुरुष ने जापान को अल्प कालही में इस योग्य कर दिया कि वह संसार में सबसे बड़े शक्तिशाली

देश, रूस, को पराजय पर पराजय दे रहा है, उसका नाम ईटो है। ईटो के पिता का नाम था जज़ो ईटो था। वे बाग़वान थे। उनको दो तलवारें बाँधने का अधिकार पहले न था। जापान में समुराई वंश के लोगों ही को दो तलवारें रखने को प्रतिष्टा प्राप्त है। वे लोग औरों की अपेक्षा अधिक माननीय माने जाते हैं। परन्तु जज़ो ईटो की सविशेष योग्यता का विचार करके, पीछे से, उनको भी दो तलवारें बांधने का अधिकार मिल गया था।

मारकुइस ईटो उदारता की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। अनेक होनहार युवकों की उन्होंने बित्त बाहर सहायता की है। ये युवक इस समय जापान में बहुत अच्छे अच्छे पदों पर अधिष्ठित हैं। चीन के कौण्ट ली हंग चंग की तरह अगर वे चाहते तो अपरिमित धन सञ्चय कर लेते। परन्तु वे अत्यन्त सत्य-प्रिय, सन्तोषी और नेक-नीयत आदमी हैं। अनुचित मार्ग से द्रव्य इकट्ठा करना वे महान् पातक समझते हैं।

ईटो चार दफ़ः मिकाडो के प्रधान मन्त्री रह चुके हैं। इस समय यद्यपि वे प्रधान मन्त्री के पद पर नहीं हैं, तथापि जितने बड़े बड़े काम हैं, सब में गुप्त-रीति से वे योग देते हैं बिना उनकी राय, बिना उनकी मन्त्रणा, के कोई काम नहीं होता। इस समय यह जो रूस और जापान का प्रलयङ्कर युद्ध हो रहा है। उसमें ईटो के बुद्धिवैभव का पूरा पूरा उपयोग किया गया है। अभी थोड़ेही दिन हुए वे कोरिया को गये थे। वहां राजधानो सिउल में रहकर और वहां की अराजकता के निवारण करके उन्होंने नवीन प्रकार का प्रबन्ध किया है।

इस समय इस भूमण्डल के भिन्न भिन्न देशों के जितने प्रधान मन्त्री हैं, मारकुइस ईटो उन सब में कम धनी हैं। उनको सिर्फ़ उतनाहीं धन मिलता है जितने से उनका मामूली ख़र्च चला जाय। यदि कभी उनको अधिक रुपया मिल जाता है तो उससे वे होनहार जापानी युवकों को योरप या अमेरिका में विद्याध्ययन करने या कला कौशल सीखने के लिए भेज देते हैं। उनकी निर्धनता का एक उदाहरण लीजिए। जापान की राजधानी टोकियो में कई एकर ज़मीन एक ऐसे मौके पर थी जो बहुत ही अच्छा था। यह ज़मीन ईटो के पिता ने प्राप्त की थी। ईटो ने वहीं पर अपने रहने के लिए एक बहुत अच्छा मकान और बाग़ बनाया। वहीं पर वे बहुत दिनों तक रहते भी रहे। परन्तु यकायक उनको रुपये की ज़रूरत पड़ी। अतएव अपने मित्र वाइकौण्ट कागवा की मारफ़त उसे उन्होंने बेरन इवासकी को सिर्फ़ १८,००० रुपये पर बेच डाला। इस जायदाद की क़ीमत इस वक्त कम से कम १५,००,००० रुपये कूती जाती है! तब से मारकुइस ईटो के पास रहने को मकान नहीं है। वे इधर उधर मारे मारे फिरते हैं। कभी वे नतसुशीमा में, कभी वोदावेर में, कभी इसरागो में, कभी अज़ब्र में, और कभी टोकियो में रहते हैं। सुनने से तअज्जुब होता है; परन्तु उनकी कुल जायदाद १,२०,००० रुपये से अधिक नहीं है।

मारकुइस ईटो ख़लासी बन कर पहले पहल इङ्गलैण्ड पहुँचे। जहाज़ के ख़लासियों को कैसा सख्त काम करना पड़ता है यह बात छिपी नहीं है। परन्तु उस अधम और परिश्रम के काम को ईटो ने बड़ी मुस्तैदी से किया। जिस समय वे लण्डन पहुँचे, उनकी जेब में सिर्फ़ पाँच चार रुपये थे। वहां उन्होंने पश्चिमी देशों की सभ्यता, उनकी राज्यप्रणाली, उनकी युद्धविद्या और उनके कला-कौशल को यहां तक सीखा कि वहां से लौटकर उन सब बातों की प्रतिच्छाया जापान में उन्होंने प्रकट कर दी। उनके बराबर स्वदेश-भक्त, दृढ़-प्रतिज्ञ, सत्यप्रिय और नीति-निपुण पुरुष जापान में दूसरा नहीं। जापान का एक च्छत्र राज्य और वहां का पारलियामेण्ट उन्हींके अद्भुत अध्यवसाय का फल है।

मारकुइस ईटो परिश्रम से बिलकुल नहीं डरते। जो ख़लासी का काम कर सकैगा वह क्या न कर सकैगा? आराम क्या चीज़ है यह वे जानते ही नहीं।

चार घण्टे से अधिक आप कभी नहीं सोते। सुबह जब तक उनके नौकर बिस्तर से उठते हैं और उनके लिए क़हवा तैयार करते हैं, तब तक वे बाग़ में टहला करते हैं। उनको कोई व्यसन छू तक नहीं गया। उनका सिर्फ़ एक ही निज का नौकर है; वही उनके सब काम करता है। शेष नौकर घर के काम के लिए हैं। उनके कमरे में जो सामान है सब सादा है। कुरसियां कई एक अवश्य हैं; पर आराम कुरसी एक भी नहीं है! अच्छा चुरुट उनको अधिक पसन्द है; वे तम्बाकू के बहुत बड़े परीक्षक हैं। पोशाक उनकी सादी है। "फ़ैशन" का उनको बिलकुल ही ख़याल नहीं है।

मारकुइस ईटो यद्यपि इतने सोधे सादे हैं और यद्यपि उनके यहां धन की विशेषता नहीं है, तथापि उनको पढ़ने लिखने का बेहद शौक़ है। योरप और अमेरिका में आज तक जितनी उम्दा उम्दा किताबें निकली हैं वे सब उनके पुस्तकालय में विद्यमान हैं। नई नई पुस्तकें जो निकलती जाती हैं निकलने के साथही उनके हाथ में पहुँचती हैं। जितनी पुस्तकें उनके यहां हैं सब उन्होंने पढ़ी हैं। जो नई पुस्तक उनके हाथ आती है उसे आवरण पृष्ट (title page) से लेकर अन्त तक वे बिना पढ़े नहीं रखते। पाँच से लेकर छ घण्टे तक वे रोज़ पुस्तकावलोकन करते हैं। जर्मन, अँगरेज़ी, फ़्रांस और चीनी भाषाओं के वे उतने ही विद्वान् पण्डित हैं जितने कि विश्वविद्यालय के अध्यापक होते हैं। जापानी भाषा के विषय में तो कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं। ईटो के लिए साहित्य की उतनी ही ज़रूरत है जितनी धुवांकश के लिए कोयले की ज़रूरत होती है। वे अत्यन्त मिष्ठभाषी हैं। दूसरे देशों की भाषाओं को वे वैसीही शुद्धता से बोलते हैं जितनी शुद्धता से उन उन देशों के पण्डित उन्हें बोलते हैं। उनका उच्चारण भी बहुत अच्छा है। परन्तु उनकी गिनती अच्छे वक्ताओं में नहीं है।

सर एडविन आरनल्ड जापान के विलक्षण भक्त थे। उन्होंने वहां बहुत दिन तक निवास भी किया; वहां की भाषा भी सीखी और एक जापानी स्त्री से विवाह भी किया। जापान के विषय में उनको बहुत अधिक ज्ञान था। मारकुइस ईटो की उन्होंने बड़ी बड़ाई की है। मिकाडो—बादशाह—के नीचे उन्होंने इन्हींकी गणना की है। उन्होंने इनको "जापान का बिस्मार्क" कहा है। यह सर्वथा सत्य है। ईटो की बराबर राज-नीति-कुशल पुरुष जापान में दूसरा नहीं। उन्होंने जापान को एक नये साँचे में ढाल दिया। हर विषय में उसकी तरक़्क़ी की। योरप और अमेरिका में जो कुछ ग्रहण करने के योग्य था उसे उन्होंने लेलिया और जो कुछ ग्रहण करने योग्य न था उसे छोड़ दिया। वे सर्वोत्कृष्ट गुणग्राही और दोषत्यागी पुरुष हैं। आज तक जितने प्रधान और प्रख्यात पुरुष होगये हैं, प्रायः सब में एकही एक प्रधान गुण था। परन्तु ईटो में अनेक गुणों का समुदाय है। नीति-पटुता में वे चाणक्य हैं; देशभक्ति में वे विलियम पिट हैं; दृढ़ता और साहस में वे वाशिंगटन हैं; और सन्धि-विग्रह में वे बिस्मार्क हैं।

ऐसे मारकुइस ईटो के अनवरत परिश्रम से उन्नत और उत्साहित हुआ जापान इस समय संसार के सबसे अधिक बलवान राज्य से भिड़ पड़ा है। इसका अन्तिम फल क्या होगा सो अभी से नहीं अनुमान किया जा सकता। परन्तु जापान के निःसीम साहस और रणकौशल ने संसार को चकित अवश्य कर दिया है। जो मृत्यु को तुच्छ समझता है; जो अपने देश के लिए, धन की तो बात ही नहीं, प्राणों को भी हथेली पर रक्खे है; बड़े बड़े विजय प्राप्त करके भी जिसे ज़रा भी घमण्ड नहीं, ईश्वर उसका कल्याण करे!

पितृवियोग।

[१]

अहह, तात ! सपने में भी यह
मुझको था न ध्यान कभी,
कि तुम महायात्रा कर दोगे
अकस्मात् हा हन्त अभी।
ख़ैर, गये तो गये कहाँ हो,
बतलाया कुछ भी न पता;
बिन अवलम्ब बचैगी कैसे
यह कौटुम्बिक विविध लता ?

[२]

आँखों से देखा है हमने
जो चहते जाया परदेश,
अवधि बाँधि, सम्मति घर को ले,
साज बाज करते निश्शेष।
यह सांसारिक रीति सभी ने
पाली, कभी न छोड़ी है;
नहीं आपको आना क्या अब
यहाँ, इसी से तोड़ी है ?

[३]

मातृ-कलत्र-बन्धु-भगिनी औ
नातेदारों का सब भार
मेरे प्रति असमर्थ शीस पर
गिरा, सकूँ कैसे संभार।
पौरुष-हीन, सहाय न कोई,
भ्रष्ट भवन हो जावैगा;
प्राणाधार पिता ! विघ्नों से
मुझको कौन बचावैगा ?

[४]

"अन्धकार-आच्छादित मेरे
जीवन का है तातनिशेश"
जड़ता-वश मैंने चिरकालिक
मानी यह आशीष विशेष॥

हा ! परन्तु, ऐसे सुख भीतर
इतना दुख जो रहा गड़ा,
सच कहता हूँ, कभी न मुझको
अनुभव इसका जान पड़ा॥

[५]

अगुण, अबुध, बल नहीं एक भी
धीमी धार कुल्हाड़ी की;
कटै कौन विधि जीवन यात्रा,
राह अगाम इस झाड़ी की !
नहीं समझता था मैं कुछ भी,
और न सुनता था हितमन्त्र;
सावन के अंधे के मानों
हरा दीखता था सर्वत्र॥

[६]

तात ! तुम्हारे ही बल से मैं
अहंभाव से भरा हुआ,
फिरा किया उद्दण्ड बैल सा
निज करतब से फिरा हुआ।
तव मन की अभिलाषायें जो
तुम्हें महा उपयोगी थीं
मुझको निपट अयोग्य जान कर
गईं साथ; सहयोगी थीं॥

[७]

तव भुज-अर्जित अमित सुखों का
स्वतंत्रता-संयुत कुछ भी,
मेरी बोध हीन आत्मा ने
किया या नहीं भोग कभी।
यह शङ्का उठती है अब तो
मन में मेरे बारम्बार;
नहीं ठहरता है कुछ सत्या-
सत्ययुक्त सिद्धान्त विचार॥

[८]

चिन्ता ज्वर की, तात ! तपन सी,
दावा नित तन लगी रहै;

साहस पास नहीं आता है;
　　करुणा केवल जगी रहे ।
शान्ति-प्राप्ति के हेतु अतः
　　मैं जहाँ जहाँ टकराता हूं;
उस ममता की दृढ़ डोरी से
　　फिर तुरन्त खिँच जाता हूं ॥

[९]

कभी कभी कल्पना-जगत का
　　होता हूं मैं अधिवासी ।
भ्रमण किया करता हूं उस में,
　　आख़िर हूं सत्यानासी ।
व्याकुलता व्यापक होतेही,
　　समझे औ समझावे कौन ?
कभी अश्रुधारा बहती है,
　　कभी बैठ रहता हूं मौन ॥

[१०]

कहाँ गई वह मधुर सीख तव
　　वत्सलता की पयस्विनी ?
कहाँ अतुल दक्षता तुम्हारी
　　त्रिविध-ताप-बाधा हरनी ?
जो अरण्य-रोदन सा मेरा
　　यह विलाप हो रहा वृथा !
क्या भूतात्मक तत्व न कोई
　　बचा ? हाय ! आश्चर्य-पृथा !

[११]

समझाते हैं लोग जहाँ जब
　　वहीं कण्ठ भर आता है;
सहानुभूति-प्रकाशक उनका
　　वाक्य कहाँ धों जाता है ।
सोच सोच गुणराशि रावरी
　　पार नहीं मैं पाता हूं !
मन मानता नहीं, मैं यद्यपि
　　बार बार समझाता हूं ॥

अनन्तराम पांडेय ।

बुलबुल ।

प्रभात हो सुन्दर बैन मीठे
　सुहावने तू नित बोलती है ।
प्रसूनशाली-वन-बाग़-बीच
　सुडालियों में नित डोलती है ॥

पड़े पड़े बिस्तर में प्रभात
　खुली नहीं है जब आँख मेरी ।
सूर्य-प्रभा को प्रथमा दशा में
　देती सुनाई तब तान तेरी ॥

कभी कभी पुष्पित-आम-डाल पै,
　समीप के पीपल पै कभी तू ।
कभी कभी दाड़िम के द्रुमों पै;
　तू खेलती है वन में सदैव ॥

पी पी प्रसूनासव मत्त हो के
　तुरन्त ही तू नित नाचती है ।
महा सुरीले सुर से पुनः पुनः
　बता किसे नित्य पुकारती है ?

नये नये तू प्रकृति-प्रभा के
सौन्दर्य्य को नित्य निहारती है।
हटाय उसके मुख से नवाम्बर
मानों उसे आप उघारती है॥

उपवन वन में है वास तेरा सदैव;
प्रति दिन तरुओं पै तान मोठी सुनाती।
अति ललित अनोखी, माधुरी-युक्त, प्यारी
सुरपुर-अवनी को तुल्यता तू दिखाती॥

अनुपम-उपमा की भाव-उत्पत्ति द्वारा
कविवर-हृदयों को खूबही तू लुभाती।
अति सरस, सुरीली बोलियों के बहाने
अविरल-मधु-धारा कान में तू बहाती॥

सुकमल-कलियों को नींद से तू उठा के
विकसित कुमुदाली को सदा तू सुलाती।
थकित शशिकला के नित्य-विश्राम-हेतु
स्वगृह-गमन की है तू बिदाई मनाती॥

आई क्या तू, सतनु, उड़के स्वर्ग की वाटिका से
भोगैश्वर्य्य-प्रणय-सुख का त्याग सारा सुवास?
आशा-तृष्णा-रहित मन से शान्त-एकान्त-वृत्ति
से जो तू ने विजन वन में ही किया है निवास॥

होता आकर्षित मन अहो! गान आनन्दकारी
तेरा प्रातः समय सुन के, मञ्जु माधुर्य्यधारी।
जारी होता जल नयन से, अङ्ग में स्वेद आता;
है क्या तेरी यह जग-वशीकारिणी शक्ति भारी?

सत्यशरण रतूड़ी।

मालविका और अग्निमित्र।

[महाकवि श्रीकालिदास के नाटक की आख्यायिका।]

[गत अंक के आगे]

[५]

महारानी धारिणी की चेरी समाहितिका "प्रमदवन" की मालिन मधुकरिका को ढूंढती हुई उक्त वन में पहुंची। वह उपवन में इधर उधर घूमती हुई ऋतुराज की चढ़ाई की अपूर्व छटा निरख रही थी कि इतने ही में उसने गुलाब की टट्टियों से निकल कर आती हुई मधुकरिका मालिन को देखा और कहा,—"अरी मालिन, मैं तुझे ढूंढ रही थी; अच्छा हुआ कि तू जल्दी ही मिलगई। मुझे योगिनी जी ने एक नारंगी लाने के लिए भेजा है; क्योंकि आज वे महाराज से मिलने जायंगी; इससे ख़ाली हाथ कैसे जायँ"।

मधुकरिका ने कहा—"सखी! अरे, यही तो तेरे दाहिने हाथ की ओर नींबू के पेड़ों का झुरमुट है। जितना जी चाहे तू इनमें से तोड़ले। पर यह तो बतला कि आजकल मालविका के बारे में जैसी जैसी बातें मैं सुन रही हूं, उनमें सचाई कितनी है।

यह सुन और चारों ओर देखभाल कर समाहितिका ने धीरे से कहा—"सखी, कह तो सही, भला, बड़े घराने की बातें हम बिचारी बांदी क्या जानें? पर इतना तो देखा जाता है कि महाराज मालविका को कुछ विशेष प्यार की नज़र से देख रहे हैं; और वैसेही वह भी उनकी तरफ़ मुख़ातिब पाई जाती है; पर देखने से मालूम होता है कि, महाराज महारानी के भय से या उनका मान रखने के लिए खुल कर वे मालविका से नहीं मिल सकते। और यही कारण है कि वे दोनों नये प्रेमी आज कल पाला के मारे हुए कमल की तरह फीके दिखाई पड़ते हैं।

इसके अनन्तर समाहितिका कुछ नींबू तोड़कर अंतःपुर की ओर गई और मधुकरिका प्रमदवन की सफ़ाई करने में लौलीन हुई; क्योंकि ऋतुराज का

आगमन हो गया है और झूला झूलने की तैयारी बहुत जल्द की जायगी।

[६]

मध्यान्होत्तर महाराज अग्निमित्र अपने विलास-भवन में विदूषक के साथ बैठे हुए मालविका के मिलने का उपाय सोच रहे थे; और बारबार अविचारी मदन को धिक्कार देते हुए, अपने हृदय की दहकती हुई आग की ज्वाला से विवश हो, घबरा रहे थे। इतने ही में छोटी रानी इरावती की चेरी निपुणिका ने आकर रानी की ओर से महाराज को प्रमदवन में झूला झूलने के लिए आने का अनुरोध किया, जिसे महाराज ने सादर स्वीकार कर तो लिया, किन्तु निपुणिका के चले जाने पर उन्होंने अपनी विरहवेदना का स्मरण करके गौतम से कहा कि—"ऐसी अवस्था में जब कि चित्त किसी दूसरी ओर लग रहा है, मानवती रानी का सामना करना अपनी एक प्रकार सरासर फ़जीहत कराना है; इसलिए, मित्र! हम चाहते हैं कि स्वीकार करके भी किसी प्रकार इस न्योते को टाल दें, और प्रमदवन में न जायँ"।

महाराज की इस प्रकार अधीरता को देख, मुसकुरा कर गौतम ने कहा—"मित्र! यद्यपि स्त्रियाँ ऐसी बातों के परखने में बड़ी ही चतुर होती हैं, कि उनके चाहनेवाले का चित्त कहीं किसी और ठौर तो नहीं लगा है; पर, तो भी, हम यह उचित नहीं समझते कि आप न्योता स्वीकार करके भी उसे टाल दें; और रानी की मानरूपी आग में घी की आहुति दें। आपके इस सन्ताप को दूर करने के लिए हम जान लड़ाकर उपाय कर रहे हैं और आशा है कि बहुत जल्द आप अपने मनोरथ को पहुंच जायँगे। ऐसी हालत में अपने चित्त को इस प्रकार डामाडोल करना, और बरबस रानियों के आगे अपने को हलका बनाना, आपके लिए उचित नहीं है"।

निदान गौतम की इस प्रकार उचित सलाह की सराहना कर और उसकी बातों को मान कर महाराज उसे साथ लिये हुए प्रमदवन की ओर चले। मार्ग में गौतम ने महाराज से कहा कि जैसी उड़ती ख़बर मैंने सुनी है, उससे आशा की जाती है कि बकुलावलिका आज अपने कामों को बड़ी ख़ूबी के साथ करेगी और इससे निश्चय होता है कि आप बे-रोक-टोक मालविका से मिल सकेंगे। मैंने जो कुछ सुना है उसका मतलब यही है कि कल झूले से गिरजाने के कारण महारानी धारिणी के पैरों में कुछ चोट आ गई है; इसलिए आज वे कदाचित् प्रमदवन में न आसकेंगी; और लाल अशोक को पैर से छूने के लिए मालविका को ही भेजेंगी। यदि ऐसाही हुआ, और मेरी कारखाई में कुछ बाधा न पड़ी, तो मालविका से भेंट होने में विशेष कठिनता नहीं देख पड़ती। किन्तु कुछ झमेला देखने में आता है तो वह यह है, कि आप उसी प्रमदवन में चल रहे हैं, जहां लाल अशोक को पादस्पर्श करने के लिए मालविका आवेगी और जहां झूला झूलने के लिए आपको रानी इरावती ने बुलाया है। अब यदि, ईश्वर न करे, मालविका और रानी इरावती अपने अपने कामों के लिए एकही समय उपवन में आ पहुंचें, तो आपके काम, अर्थात् मालविका से मिलने, में बाधा पड़नी सम्भव है। किन्तु जहां तक मैंने पता लगाया है, यदि रानी इरावती बहुत जल्दी करें, तो भी वे संध्या के पहले प्रमोद-वन में नहीं आसकेंगी। और मालविका के आने का समय, जहाँ तक मुझे मालूम है, बहुत समीप है।"

इन बातों को महाराज ने ध्यानपूर्वक सुना, या समझा, अथवा नहीं, यह हम नहीं कह सकते; क्योंकि उस समय उनका चित्त हज़ारों टुकड़े होकर चारों ओर छिटका हुआ था, जिसके बटोरने और ठिकाने लाने के लिए वे उद्योग कर रहे थे। आख़िर वे दोनों प्रमदवन में पहुंचे और घूमते फिरते तथा ऋतुराज की अलौकिक छटा निरखते हुए, उस लता के घने झुरमुट के पास पहुंचे, जिसके दाहिने, थोड़ी ही दूर पर, वह लाल अशोक था जिसे स्पर्श करने के लिए कदाचित् आज मालविका

आवे। किन्तु वह झूला, जिसपर आज इरावती ने महाराज को झूलने के लिए बुलाया है, उस लाल अशोक या लतापुञ्ज से दूर है। बस यही महाराज तथा गौतम के सन्तोष का कारण है। उन दोनों ने यही सोच रक्खा है कि इस निराली जगह में पहले मालविका से मिलने का सुख उठायेंगे फिर इरावती के आने पर यहां से खिसक कर उससे जा मिलेंगे।

निदान वे दोनों लताओं के झुरमुट में घुसकर कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि उनके कानों में एक ऐसी रसीली आवाज़ पहुंची, जिसने महाराज अग्निमित्र के चित्त का भाव एक दम बदल दिया। तब उन्होंने गौतम का हाथ पकड़ कर धीरे से कुछ इशारा किया। उस आवाज़ के भेद को गौतम भी जान गया। इस लिए महाराज के इशारे को समझ कर और मुसकुराकर उन्हें उस ओर देखने के लिए उसने कहा; और आप भी उसी ओर झाँकने लगा, जहां पर ये दोनों खड़े थे वह एक माधवीलता का बहुत ही घना झुरमुट था। उसमें से लताओं को ज़राज़रा हटा और झरोखे की तरह छेद बनाकर वे दोनों उस ओर देखने लगे जिधर से एक प्रकार की आवाज़ सुनाई दी थी। पर वह किस प्रकार की आवाज़ थी, और किस की थी, इस विषय में हम अपने पाठकों को विशेष उलझन में न डाल कर उसकी ख़बर यहीं दे देना उचित समझते हैं। और वह यह है कि जहां महाराज और गौतम खड़े झाँक रहे थे, उसके आगेवाले लता-मंडप में, महारानी धारिणी के संपूर्ण आभूषण पहने और लाल दुकूल धारण किये हुए, स्फटिक शिला पर मालविका बैठी थी। उसके सामने उनको प्यारी सखी वकुलावलिका भूमिपर बैठी हुई उस (मालविका) के नाजुक और मुलायम पैरों में महावर लगा रही थी। उसी अवस्था में उसने हँसकर यह कहा कि–"सखी! तुम्हारे ये कोमल और रँगीले चरन तो हमारे रसीले महाराज के अंक में विराजने के योग्य हैं"।

जिस शब्द को सुनकर महाराज और गौतम चौंक पड़े थे, और जिसको ख़बर हम ऊपर दे आये हैं, वह वकुलावलिका का वाक्य था; जिस पर मालविका ने उसके हाथ को झटक, त्योरी चढ़ा, और ज़रा मुँह मोड़ तथा आँखें मटका कर कहा–"चल, दूर हो सामने से। क्यों व्यर्थ कटाक्ष करती है? भला सखी, तनिक मन में तो सोच कि तेरे उलाहने के लिए क्या एक मैं ही हूं? अरे! मेरे ऐसे भाग कहां कि महाराज के चरन मुझे नसीब हों। मैं एक तो जनम की दुखिया; और दूसरे अभागिन; तब तो महारानी की लौंडी बन कर दिन काट रही हूं; तथा अपने जले हिये को और भी दिन रात मदन की ज्वाला में झोंसा रही हूं। इतने पर भला जो तू मेरे कलेजे की आग में अपने परिहास का घो न छोड़े, तो तेरी कुछ हानि हो"?

इस पर वकुलावलिका ने हँसकर कहा–"सखी, सच मानना, तुझ से बढ़कर संसार में मेरा प्यारा दूसरा अब कोई नहीं है; पर जब मैं यह देख रही हूं कि तू महाराज के विरह में दिन पर दिन कुम्हलाई हुई कमलिनी की भाँति मुरझाई जाती है तब क्या मैंने बुरा किया जो तेरे जी की बात, जिसे तू आज तक मुझसे छिपाये हुए थी, खोलदी। भला यह तो बता कि क्या तुझे अपने प्राणप्यारे महाराज की उस दशा पर भी तरस आता है जो तेरी जुदाई में आजकल उनकी हो रही है? तू चाहे विश्वास कर या न कर, पर यह बात मैं क़सम खाकर कह सकती हूं, कि महाराज के जैसे रूप को तू ने रंगशाला में देखा था, यदि उन्हें अब देखै तो जलदी न पहिचान सकेगी, कि ये वेही महाराज हैं"।

वकुलावलिका की इन बातों को सुन मालविका ने हँस दिया और फिर ठंढी सांस भर कर उसने कहा कि–"सखी! अरी, यह क्या तू सच कहती है? क्या आज मैं अपनेको इस योग्य समझूँ और अपना भाग्य सराहूं कि महाराज इस अनाथ को सनाथ करने की इच्छा रखते हैं"?

इस पर वकुलावलिका ने कहा—"सखी! इसमें क्या तुझे अभी संदेह प्रतीत होता है? ऐसा न सोच! यह बात उतनी ही सच्ची ग्रैार ठीक है कि जितना दिन में सूर्य भगवान का निकलना ग्रैार रात में चांद का"।

निदान इधर ते इस प्रकार ये सब बातें इन दोनों में हो रही थीं ग्रैार उधर महाराज अग्निमित्र उसी छिद्र द्वारा अपने अतृप्त लोचनों के मालविका के बारम्बार देखने से तृप्त ग्रैार अपने जले हिये के ठंढा कर रहे थे। इतने ही में रानी इरावती बाग़ में पहुंच, ग्रैार मालिन से यह जान कर कि महाराज बहुत देर पहले ही से यहां ग्राये हुए हैं, चिहुंक उठीं; ग्रैार झूले के पास महाराज के न देख अपनी चेरी निपुणिका के साथ उन्हें प्रमद वन में इधर उधर ढूंढने लगीं। यहाँ इस प्रकार उन के चिहुंकने का कारण यही था कि वे भी महाराज ग्रैार मालविका के गुप्त प्रेम का हाल जान गई थीं; ग्रैार यह भी उन्हें मालूम हो गया था, कि ग्राज लाल ग्रशोक के चरन से छूने के लिए मालविका प्रमदवन में ग्रावेगी। तो जब कि महाराज बहुत पहले ही से बाग़ में ग्राये हैं, तब निश्चय है कि मालविका भी ग्राईही होगी; ग्रैार वे उस (मालविका) से प्रेमालाप ग्रवश्य ही कहीं एकान्त में बैठकर करते होंगे। यह सोचकर इरावती ग्रपनी चेरी के साथ महाराज के ढूंढ़ती ढूंढ़ती लतामंडप के उसी झुरमुट के पास पहुंचीं, जहाँ मालविका थी; ग्रैार जहां उसकी एक तरफ़ महाराज, गैातम के साथ, एक प्रकार छिपे हुए से बैठे थे। इरावती ने उसी कुञ्ज में घुस कर महाराज ग्रैार मालविका के देखा। तब वे ग्राप भी वहीं पर एक ऐसी जगह छिपकर खड़ी हो रहीं कि जहां से वे मालविका ग्रैार महाराज के देखें; पर वे लोग इन्हें (इरावती) के न देख सकें।

पाठक इस बात के जान रक्खें कि जब मालविका ग्रैार वकुलावलिका में वे बातें हुई थीं, जिन्हें हम ऊपर कह ग्राये हैं, उसके पहले ही इरावती वहाँ पहुंच गई थीं। ग्रैार उन्होंने (इरावती ने) उन बातें के बिलकुल सुन लिया था। इस लिए ग्राज तक जो वे महाराज ग्रैार मालविका के प्रेम की कहानी कानों से सुना करती थीं वह ग्राज उनकी ग्रांखों के ग्रागे ग्रा गई।

निदान वकुलावलिका ने जब भली भांति मालविका के सँवार लिया, तब उसे लाल ग्रशोक के किनारे ले जा कर खड़ी किया; ग्रैार मालविका ने ग्रपने बांये चरन से उस ग्रशोक के छुग्रा। ठीक उसी समय प्रगट होने का ग्रवसर जान महाराज ने ग्रागे बढ़ ग्रैार मुसकुरा कर मालविका की ग्रोर देख दबे हुए ग्रनुराग से कहा—"सुन्दरी! तुम कैान हो जो बिना हमारी ग्राज्ञा के ग्रशोक का स्पर्श कर रही हो?"

यह सुन ग्रैार महाराज के सामने देख बेचारी भोली मालविका ते लज्जा, भय, संकोच ग्रैार पूर्वानुराग के कारण संकुचित हो गई; पर गैातम की सिखलाई हुई, जिसने कि मालविका के महाराज से मिलाने के लिए इतना प्रपंच रचा था, वकुलावलिका मुसकुराकर मालविका की ग्रोर से बोली—"महाराज, यह ग्रपराध बड़ी महारानी जी के ग्रनुरोध से इन्होंने किया है। यदि इसमें कुछ ग्रपराध ग्रैार दोष हो ते ग्राप क्षमा करें।"

इस पर महाराज ने मुसकुराकर कहा—"ग्रच्छा, किन्तु यदि ये हमारी भी किसी छिपी हुई ग्राशालता के ग्रपने प्रेमवारि से सींचकर प्रफुल्लितकरें"।

यह सुन लज्जा के भार से दब कर मालविका ने सिर झुका लिया; ग्रैार वकुलावलिका ने कहा—"हाँ, हाँ, महाराज! भला ग्रापकी ग्राशा के ये न पूरी करें, यह कभी हो सकता है? ग्राप कृपापूर्वक ग्रपनी इच्छा के प्रगट ते करें, कि ग्राप हमारी भोली सखी से क्या चाहते हैं"?

महाराज ने प्रसन्न हो कर कहा—"ग्रच्छा, जो कुछ हम चाहते हैं, उसे फिर किसी समय एकान्त में कहेंगे"।

"नहीं, नहीं, जो कुछ आप को कहना या सुनना, लेना या देना हो, उसे अभी ही निपटा डालिए; क्योंकि इससे बढ़कर और निराला समय दूसरा फिर कौनसा आवेगा"–यों कहती और क्रोध से उबलती हुई रानी इरावती लताकुञ्ज से निकल वहां ही पहुँच गई जहां वे दोनों बैठी हुई थीं। इन्हें वहां पहुँची देख, और साक्षात् मौत आई हुई समझ, मालविका तो बकुलावलिका के साथ झटपट वहां से खिसकी; और इधर महाराज भी बहुत ही लज्जित और संकुचित होकर अपनी सफ़ाई के लिए बहुतेरी बातें बनाते हुए रानी के सम्मानार्थ उनके पैरों पड़े। पर उस मानिनी इरावती ने महाराज की बातों को बिलकुल अनसुनी सी कर दिया; और क्रोधसे बकती झीखती अपनेको अन्तःपुर में पहुँचाया। [असम्पूर्ण।

जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी।

इँगलैंगड की व्यापारनीति।

प्रस्तावना।

समाचारपत्रों के पढ़नेवालों को चेम्बरलेन साहब का नाम अवश्य मालूम होगा। कुछ दिनों के पहले उन्होंने इंगलैंड में व्यापार-सम्बन्धी एक बड़ा भयंकर वाग्युद्ध किया था। जब उनका प्रस्ताव पार्लिमेण्ट में स्वीकृत न हुआ, तब उन्होंने अपने पद* को त्याग कर दिया। अब वे स्वतंत्र रीति से, लेखों तथा वक्तृताओं के द्वारा, इंगलैंड के लोगों को इस विषय की शिक्षा दे रहे हैं। विद्वानों का कहना है कि उक्त वाग्युद्ध के परिणाम पर भारतवर्ष की उन्नति की आशा या अवनति का भय अवलम्बित है। यद्यपि इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातों का जानना हमारे देश भाइयों के लिये अत्यन्त आवश्यक है—क्योंकि उन सब बातों पर ध्यान देने ही से हम लोगों को यह मालूम होगा कि इस देश का व्यापार दिन दिन मिट्टी में क्यों मिलता चला जा रहा है,—तथापि बड़े खेदसे लिखना पड़ता है कि, इस विषय पर अबतक हमारे यहां किसी ने भी उचित ध्यान नहीं दिया। इस विषय पर इङ्गलैण्ड के अनेक अर्थ-शास्त्र-विशारदों, अंकानुमान-शास्त्र-सिद्धान्तियों, और कारख़ानेवालों के लेखों और वक्तृताओं से एक बड़ा भारी साहित्य बन गया है। यदि हम संक्षेप में भी उसका सार देना चाहें तो एक स्वतंत्र पुस्तक लिखनी होगी। उस पुस्तक को कोई पढ़ेगा या नहीं, इसके संम्बन्ध में शंका ही है! अतएव हम इस लेख में इङ्गलैण्ड की व्यापार-नीति पर कुछ लिख कर ऐसी मुख्य मुख्य बातों का विवेचन करना चाहते हैं जिनका सम्बन्ध हमारे ही देश से अधिक हो, और जिन पर हमारे पाठकगण कुछ चर्चा कर सकें। आशा है कि इससे पढ़नेवालों को इङ्गलैण्ड की व्यापार नीति का कुछ ज्ञान अवश्य प्राप्त हो जायगा। साथ ही उन्हें यह बात भी विदित हो जायगी कि उस नीति से भारतवर्ष को क्या हानि या लाभ है।

व्यापार-सम्बन्धी नीति*।

व्यापार की वृद्धि के लिये गवर्नमेण्ट जो कुछ करती है उसीको उसको व्यापार-नीति कहते हैं। इसके मुख्य दो प्रकार हैं। (१) अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति। जिस देश में इस नीति का स्वीकार किया जाता है उस देश की गवर्नमेण्ट और देशों के माल को अपने देशमें आने से नहीं रोकती, अर्थात् जब किसी दूसरे देश का माल वहां आता है तब वह उस पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाती। स्वतन्त्र रीति से माल का क्रय विक्रय होता है। इसीको अंग्रेज़ी में Free Trade Policy कहते हैं। (२) संरक्षित व्यापारनीति। स्वदेश के व्यापार की उन्नति हो; स्वदेश के कारीगरों का रोज़गार बढ़े; स्वदेश

* चेम्बरलेन, इङ्गलैण्ड के मन्त्रि-मण्डल में, कालोनियल सेक्रेटरी (उपनिवेश के मन्त्री) थे।

* यहां 'नीति' शब्द अंग्रेज़ी के Policy शब्द का भाषान्तर है। हम यह जानना चाहते हैं कि Policy के लिये 'नीति' शब्द से बढ़कर कोई दूसरा अच्छा पर्याय शब्द हिन्दी में है या नहीं।

को कला-कुशलता की वृद्धि हो; स्वदेश के कारख़ानों को परदेशियों के कारख़ानों की स्पर्धा से नुक़सान न पहुंचे; और स्वदेश के मज़दूरों को पेटभर खाने को और सुख से रहने को मिलै—इस लिये गवर्नमेण्ट स्वदेशमें आनेवाले परदेशी माल पर कर लगाती है। इससे परदेश का माल मँहगा हो जाता है और स्वदेश का सस्ता। इसको अङ्गरेज़ी में Protective Trade Policy कहते हैं। उक्त प्रकारों के अतिरिक्त एक और प्रकार है, जिसके छोटे छोटे अनेक भेद हैं; परन्तु वह भी सामान्य रूप से संरक्षित व्यापार-नीति ही के अन्तर्गत है। जब एक देश दूसरे देश के साथ किसी विशेष नीति को स्वीकार करता है, तब उसको किसी एक को तरफ़दारी करनी पड़ती है और किसी दूसरे से बदला लेना पड़ता है। अङ्गरेज़ो में बदला लेने को Retaliation और तरफ़दारी या रियायत करने को Preference कहते हैं। व्यापार-नीति का यह तीसरा प्रकार है।

किस देश की कौन सी नीति है।

योरपखण्ड के फ़्रांस, जर्मनी, रशिया आदि देशों तथा अमेरिका के संयुक्त और स्वतन्त्र रियासतों में संरक्षित व्यापार-नीति का पूर्ण रीति से स्वीकार किया गया है। अपने अपने देश की कारीगरी और व्यापार की रक्षा करने के लिए वहां की गवर्नमेण्ट परदेश से आये हुए माल पर कर लगाती है।

इङ्गलैण्ड में भूमि उपजाऊ नहीं हैं, उसमें अनाज वगैरह अच्छी तरह से नहीं उपजता। अर्थात् वहां हर किस्म का कच्चा माल बहुत कम होता है। परन्तु वहां कारख़ाने बहुत से हैं। उन लोगों को अपने कारख़ानों में किसी तरह का माल तैयार करने के लिये कच्चा माल स्वदेश में नहीं मिलता। वह और देशों से मंगवाया जाता है। यदि दूसरे देशों से कुछ माल न मंगवाया जाय तो वहां रोटी महँगी हो जायगी और मज़दूरों को कुछ काम नहीं रहेगा। इस लिए—अर्थात्, अपने देश की उक्त आर्थिक दशा को सुधारने के लिए रोटी को सस्ती करने और मज़दूरों को काम दिलाने के लिए—इङ्गलैण्ड को गवर्नमेण्ट ने अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति का स्वीकार किया। सचमुच उसने यह बड़ी दूरदर्शिता और बुद्धिमानी का काम किया। इस नीति के स्वीकार करने से उस देश के कारख़ानेवालों को पूरी तरह से कच्चामाल मिलने लगा; मज़दूरों को भी बहुत सा काम मिलने लगा; और रोटी सस्ती हो गई। सारांश यह कि अप्रतिबद्ध व्यापारनीति से इङ्गलैण्ड की आर्थिक दशा सुधर गई और उसको बड़ा लाभ होने लगा।

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यहां हर क़िस्म का कच्चामाल बहुतायत से मिलता है। पहले यह सब माल इसी देश के कारख़ानों के उपयोग में आ जाता था। परन्तु जब से यह देश अंग्रेज़ों के आधीन हुआ है तब से यहां का कच्चा माल इङ्गलैण्ड को चला जाता है। इस देश में भी अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति स्वीकार की गई है।

इस समय दुनियां में इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष को छोड कर किसी देश ने अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति का स्वीकार नहीं किया है। अङ्गरेज़ लोग इस बात को गौरव-सूचक और सभ्यता का लक्षण मानते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश इस नीति का परिणाम न तो इङ्गलैण्ड के लिए अच्छा हुआ और न भारतवर्ष ही के लिए।

परिणाम।

भारतवर्ष के व्यापार की दशा, अङ्गरेज़ों के आने के पहले ही, बिगड़ चुकी थी। मुसलमानों, की सार्वभौम सत्ता का नाश हो गया था। परदेशी लोग, जैसे डच, पोर्चुगीज़, फ्रेंच और अङ्गरेज़ अपनी अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए भयानक युद्ध कर रहे थे। इससे देशी रजवाड़ों को भी स्वतंत्र होने, और अपनी अपनी कल्पना के अनुसार हिन्दू राज्य स्थापित करने का अच्छा अवसर मिल गया। सौ डेढ़ सौ वर्ष तक इस देशमें अविच्छिन्न शान्ति का नाम न था। सदा लड़ाई और

लूटमार हुआ करती थी। ऐसी अवस्था में व्यापार और उद्योग की ओर कौन ध्यान देता है? सच पूछो तो उस समय यहां का व्यापार आसन्नमरण हो गया था। ठीक उसी समय, दयालु अङ्गरेज़ों ने इस देश को अपना आश्रय दिया। और उन्होंने इस ग्रीष्म-प्रधान देश में अपना राज्याधिकार जमाया। आशा की गई थी कि, इस अभागे देश का अवश्य कुछ कल्याण होगा—इस देश का व्यापार अवश्य सुधर जायगा। परन्तु अनुभव से ज्ञात होता है कि उसके बदले कुछ और ही हुआ!

इङ्गलैण्ड के राजनीति-निपुण तथा अर्थशास्त्रज्ञ लोगों ने देखा कि अपने देशवासियों के लाभ के लिए, अपने देश के सब कारखानों को कच्चा माल और मज़दूरों को पूरा पूरा काम मिलना चाहिए। बस, उन लोगों के अनुरोध से भारतवर्ष में अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति जारी हुई। इसमें संदेह नहीं कि उन राजनीति-निपुण तथा अर्थशास्त्रज्ञ लोगों की यह भी धारणा थी कि अप्रतिबद्ध व्यापार से भारतवर्ष का कल्याण होगा। हम नहीं कह सकते कि उन लोगों का उक्त धारणा पर दृढ़ विश्वास था या नहीं। कैसे कहें? हां, हम यह कह सकते हैं कि उनके सिद्धान्त के अनुसार हमारा कल्याण तो हुआ नहीं, किन्तु इङ्गलैण्ड को भी उतना लाभ नहीं हुआ कि जितना वे लोग चाहते थे।

इस देश में अङ्गरेज़ों का राज्य होते ही सर्वत्र शान्ति हो गई; सम्पूर्ण जगत में आवागमन के मार्ग खुल गये; पृथ्वी के सब भागों में से भारतवर्ष को माल आने लगा और दूर दूर के व्यापारियों का रोज़गार खूब चटकने लगा। विदेशी व्यापारियों के पास पूंजी बहुत है। उनको अपनी गवर्नमेंट की सहायता भी मिल जाती है। बेचारे बूढ़े भारत को अपने व्यापार की टूटी फूटी दशा में ही उन लोगों से स्पर्धा करनी पड़ी। उस समय हिन्दुस्तान सरकार का यह कर्तव्य था कि वह इस असमान स्पर्धा में इस देश के व्यापारियों को कुछ सहायता देती। परन्तु जब वृटिश-राज-कार्य-धुरन्धर लोगों ने अप्रतिबद्ध व्यापारनीति का अवलम्बन किया था तब भारत के व्यापार की रक्षा कौन कर सकता था! इस बात की सत्यता के लिए हम एक दो उदाहरण देते हैं। भारतवर्ष में करोड़ों रुपये का माल हरसाल जर्मनी से आता है। कुछ दिन हुए अहमदाबाद के मिल का कपड़ा जर्मनी को भेजा गया था। वह कपड़ा वहां बहुत फ़ायदे से बेचा गया। जर्मनी के व्यापारियों को यह बात अच्छी न लगी कि हिन्दुस्थान के लोग जर्मनी में अपना कपड़ा बेचकर लाभ उठावें। उन्होंने अपनी गवर्नमेण्ट से सहायता मांगी। गवर्नमेण्ट ने अहमदाबाद के कपड़े पर ४० सैकड़ा टैक्स लगा दिया! बस, अहमदाबाद के मिल का काम चौपट हो गया!! अब कौन अपना माल जर्मनी को भेजने का साहस कर सकता है!!! खेद इसी बात का है कि हमारी गवर्नमेण्ट, अप्रतिबद्ध व्यापार का डंका बजाती हुई, जर्मनी देश का माल बिना कर लगाये यहां आने देती है। फ़्रांस देश में तेल की जिन्सों की खपत बहुत है। वहां तेल निकालने के अनेक कारख़ाने हैं। इस लिए यदि वहां तेल की कोई भी जिन्स भेजी जाय तो उस पर कर नहीं लगाया जाता। परन्तु यदि तेल भेजा जाय तो उस पर ४० से ६० सैकड़ा तक कर लगाया जाता है। कहिये, ऐसी अवस्था में यदि इस देश के तेल के कारख़ाने डूबते चले जांय तो आश्चर्य ही क्या है? पर तुर्रा यह है कि फ़्रांस देश का हर क़िस्म का माल यहां बेखटके चला आता है और देशी कारीगरी को नष्ट करके बेचारे मज़दूरों के मुँह का कौर छीन ले जाता है!!!

इङ्गलैण्ड के राज-नीति-निपुण पुरुषों ने सोचा था कि भारतवर्ष में अप्रतिबद्ध व्यापारनीति के प्रचलित कर देने से इङ्गलैण्ड को फ़ायदा होगा। सो इङ्गलैण्ड को फ़ायदा अवश्य हुआ; परन्तु जितना फ़ायदा उन लोगों ने सोचा था उतना नहीं हुआ, और उससे कहीं अधिक अन्य देशों का (फ़्रांस, जर्मनी, अमेरिका, चीन, जापान आदि)

हुआ। वाह! क्या अच्छा न्याय है! भारतवर्ष की प्राप्ति के लिये इङ्गलैण्ड ने घोर कष्ट सहे और अपरिमित द्रव्य ख़र्च किया। परन्तु फल यह हुआ कि फ़्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों के व्यापारी अपना अपना माल लेकर यहां आने लगे और करोड़ों की सम्पत्ति (जो यथार्थ में इङ्गलैण्ड को मिलनी चाहिये थी) अपने थैलों में बटोर कर ले जाने लगे। इङ्गलैण्ड की कमाई पर पृथ्वी के सब लोग (हिन्दुस्थानियों के सिवा) मज़े उड़ाने लगे। यह बात अङ्गरेज़ों को अच्छी नहीं लगी। पर क्या किया जाय? वे तो अप्रतिबद्ध व्यापारनीति के अनुयायी बन चुके थे। वे किसी प्रकार परदेशी माल पर कर नहीं लगा सकते थे। इसी लिये मि० चेम्बरलेन ने प्रस्ताव किया कि अब इङ्गलैण्ड को अप्रतिबद्ध व्यापारनीति का त्याग करना चाहिये और संरक्षणनीति का स्वीकार करना चाहिये। यही उनके वाग्युद्ध का मुख्य विषय है।

प्रधान बातें।

इस सम्बन्ध में हमको इन बातों का विचार करना है। १ इङ्गलैण्ड में व्यापारनीति के परिवर्तन की आवश्यकता इसी समय क्यों हुई? २ इस परिवर्तन से इङ्गलैण्ड को क्या हानि लाभ होगा? ३ इससे हिन्दुस्थान का हित है या अहित?

उक्त बातों में से हम इस लेख में इस विषय की अधिक चर्चा नहीं करना चाहते कि इङ्गलैण्ड को क्या हानि लाभ होगा। इसका सम्बन्ध हमारे देश से नहीं है। अतएव अब उन्हीं बातों का विचार किया जायगा कि जिनका सम्बन्ध भारतवर्ष से अधिक है।

व्यापार-नीति के परिवर्तन की आवश्यकता का कारण

हम ने ऊपर जो कुछ लिखा है उसपर ध्यान देने से यह विदित होगा कि अब तक इङ्गलैण्ड अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति का पक्षपाती था; परन्तु अब उसको संरक्षित व्यापार-नीति का स्वीकार करना ही अधिक लाभदायक जान पड़ता है। प्रश्न यह है कि, इङ्गलैण्ड को इस परिवर्तन की इसी समय कौनसी बड़ी आवश्यकता थी? पाठक जानते हैं कि बोर युद्ध के प्रधान जन्मदाता हमारे वीर मिस्टर चेम्बरलेन साहिब ही हैं। उन्होंने अपने देश भाइयों को यह कहकर युद्ध के लिए उभाड़ा था कि इस युद्ध में दस पन्द्रह करोड़ रुपये से अधिक ख़र्च न होंगे; यह युद्ध डेढ़ दो महीने में ही समाप्त हो जायगा; सब बोर लोग शीघ्र ही अङ्गरेज़ों के आधीन हो जांयगे; और आफ्रिका की सोने चांदी की बढ़िया खानें अनायास हम लोगों के हाथ लग जांयगी। दुर्भाग्य से बोर-युद्ध तीन वर्ष तक होता रहा; उसमें चार सैा करोड़ रुपये ख़र्च हुए और अङ्गरेज़ों के बड़े बड़े वीर मारे गये। अङ्गरेज़ों की अगणित सेना का संहार हुआ। इङ्गलैण्ड में हाहाकार मच गया। प्रजापक्ष के लोग गवर्नमेण्ट पर दांत पीसने लगे। मन्त्रिमण्डल पर अनेक दोष लगाये जाने लगे। उस समय प्रजा का मन और और बातों में लगाने के लिए चेम्बरलेन साहब ने बड़ी धूर्तता से तरफ़दारी के कर (Preferential Tariff) का विषय छेड़ दिया। इङ्गलैण्ड के उपनिवेशों (Colonies) ने युद्ध में सहायता दी थी। इसलिए उनको भी ख़ुश करने का उद्योग चेम्बरलेन ने किया। अर्थात् तरफ़दारी के कर का सम्बन्ध उपनिवेशों ही से रक्खा गया। यह चेम्बरलेन साहब के प्रतिपक्षियों का कहना है।

स्वयं चेम्बरलेन साहब का कथन यह है कि, अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति से इङ्गलैण्ड और उपनिवेशों को बहुत नुक़सान पहुंचा है। इङ्गलैण्ड का व्यापार घटता जाता है और दूसरे देशों का व्यापार बढ़ता जाता है। इसलिए हमलोगों को अपने व्यापार की वृद्धि के लिए अपनी व्यापारनीति में कुछ परिवर्तन करना चाहिए। जिस नीति से इङ्गलैण्ड और उसके उपनिवेशों के व्यापार की उन्नति होगी उसी नीति का स्वीकार करना चाहिए। अर्थात् इङ्गलैण्ड और उपनिवेशों के व्यापार की रक्षा करके दूसरे देशों के माल पर कर लगाना चाहिए।

यथार्थ में जिस व्यापारनीति के सम्बन्ध में चेम्बरलेन साहब ने उक्त वाद उपस्थित किया है, उसका स्वीकार इङ्गलैण्ड के एक उपनिवेश ने-कनाडा (अमेरिका) में पांच वर्ष के पहले ही कर लिया है। उस उपनिवेश में, सन् १८९६ से १९०१ तक, इङ्गलैण्ड और अन्य देशों से जो व्यापार हुआ उस का कुछ हाल नीचे के नक़शे से मालूम होगा—

सन्	ग्रेटब्रिटन का माल	फ्रांस का माल	जर्मनी का माल	अमेरिका का माल
१८९६	९ करोड़ रु०	८१ लाख रु०	२ करोड़ रु०	१५ करोड़ रु०
१८९७	६ " "	७५ " "	१½ " "	१८ " "
१८९८	९ " "	१ करोड़ रु०	१½ " "	२४ " "
१८९९	९½ " "	१ " "	१½ " "	२३ " "
१९००	१२ " "	१¼ " "	२ " "	३० " "
१९०१	१२ " "	१½ " "	२½ " "	३३ " "

कनाडा में इङ्गलैण्ड से अमेरिका का व्यापार प्रतिवर्ष, सन् १८९६ का छोड़ दूने से भी अधिक हुआ। अमेरिका में संरक्षित व्यापार-नीति का स्वीकार किया गया है। वहां इङ्गलैण्ड देश का कुछ भी माल बिना कर के नहीं लिया जाता। कनाडा में भी संरक्षित व्यापार-नीति का प्रचार है; परन्तु उसका प्रेम इङ्गलैण्ड पर अधिक है। इसलिए उसने इङ्गलैण्ड से आनेवाले माल पर ३३⅓ सैकड़ा कर घटा दिया है; अर्थात् जब अमेरिका जर्मनी, फ्रांस आदि दूसरे देशों से आनेवाले माल पर १०० रुपये कर लिया जाता है तब इङ्गलैण्ड से आनेवाले माल पर सिर्फ़ ६६⅔ ही लिया जाता है। इसीको "तरफ़दारी का कर" (Preferential Tariff) कहते हैं। चेम्बरलेन साहब का कहना है कि इस प्रकार के तरफ़दारी के कर की प्रणाली सभी उपनिवेशों में जारी हो जाय। सारांश यह कि, इङ्गलैण्ड का जो माल उपनिवेशों में भेजा जाय उसपर थोड़ासा कर लगाया जाय; और दूसरे देशों के माल पर बहुत कड़ा कर लगाया जाय।

हम आशा करते हैं कि पाठकों को यह बात भली भांति विदित हो गई होगी कि इस समय इङ्गलैण्ड में व्यापार-नीति के परिवर्तन की आवश्यकता क्यों है। साथ ही यह भी मालूम हो गया होगा कि उस परिवर्तन का फल "तरफ़दारी का कर" (Preferential Tariff) है। अब इस बात पर विचार करना है कि भारतवर्ष से इसका क्या सम्बन्ध है।

भारतवर्ष का हित है वा अहित ?

प्रस्तुत विषय का यह भाग अत्यन्त महत्व का है। १० जुलाई १९०३ को लन्दन में, लार्ड लोगों की सभा में तरफ़दारी के कर के सम्बन्ध में बड़ा वाद विवाद हुआ। उस समय लार्ड लैन्सडैान ने कहा—'India could not afford to show preference to friendly and retaliate on unfriendly Nations.' अर्थात्, भारतवर्ष न तो स्वकीय राष्ट्रों की तरफदारी कर सकता है और न पराये राष्ट्रों से बदला ले सकता है। लार्ड नार्थब्रुक, लार्ड रिपन, लार्ड एलगीन और लार्ड रे महोदयों ने भी कहा कि—"इस विषय में (तरफ़दारी के कर के सम्बन्ध में) भारतवर्ष को शामिल करना अच्छा नहीं है।" दादाभाई नौरोजी और भावनगरी को स्वयं चेम्बरलेन साहिब ने पत्र द्वारा लिखा कि—"जब इस विषय पर भारतवर्ष के लोगों की सम्मति मालूम हो जायगी तब इस बात का निर्णय किया जायगा कि उक्त देश में भी तरफ़दारी के कर की पद्धति प्रचलित की जाय या नहीं"। ऐसी अवस्था में क्या यह इस देश के विचारशील लोगों का कर्तव्य नहीं है कि वे इस विषय पर कुछ चर्चा करें और इस बात को सोचें कि तरफ़दारी के कर से हमारा हित होगा वा अहित? इस विषय पर कुछ लिखने के पहले हम भारतवर्ष की व्यापार नीति का संक्षिप्त इतिहास देना चाहते हैं; क्योंकि उसके स्पष्टीकरण के बिना यह बात यथार्थ रीति से ध्यान में नहीं आ सकती।

(क) भारत वर्ष की व्यापार नीति का इतिहास।

व्यापार-नीति की दृष्टि से भारतवर्ष बड़ा अभागी है। भारतवर्ष की कारीगरी और भारतवर्ष

मसाई जाति का भालाधारी पुरुष ।

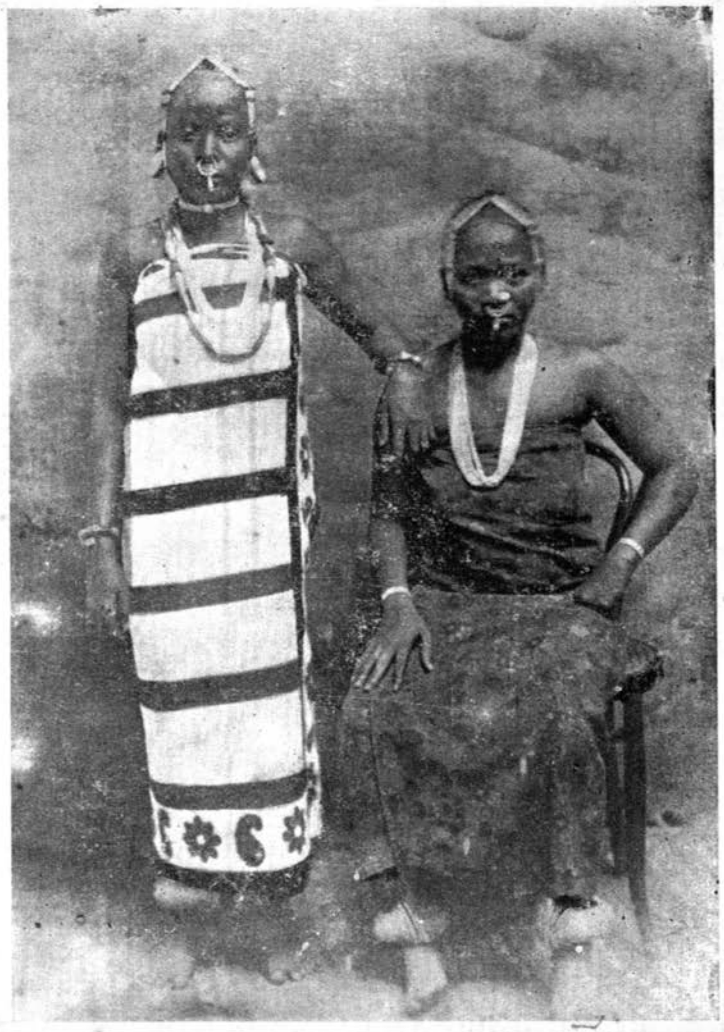

ममबासा में अच्छे घरों की सुहेली स्त्रियां ।

की कुशलता सब नष्ट हो गई है। भारतवर्ष का व्यापार, भारतवर्ष ही के लोगों को, दिन दिन दरिद्री बनाता जाता है। उसकी आर्थिक दशा खेदकारक हो रही है। प्राचीन समय में भारतवर्ष का व्यापार अच्छी दशा में था। योरप के कवियों, लेखकों और प्रवासियों ने इस देश की कारीगरी की प्रशंसा हृदय से की है। इस देश का माल दुनियां के सब भागों में पसन्द किया जाता था। परन्तु उस समय के भारतवासी व्यापार-नीति या अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को नहीं जानते थे। यद्यपि वे अपने व्यापार से लाभ उठाते थे और सर्वमान्य नीति से व्यवहार करते थे; तथापि वे अप्रतिबद्ध व्यापारनीति और संरक्षण व्यापार-नीति के शास्त्रीय सिद्धान्तों से अपरिचित थे। यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि इस समय उक्त नीति से ही उसकी आर्थिक दशा चौपट हो रही है! देखिये, यह कैसे हुआ।

सन् १७६५ ई० से, इस देश में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यवस्थित राजसत्ता का आरम्भ हुआ। उसके पहले वह केवल व्यापारियों की एक मण्डली थी। सन् १७६५ ई० में इङ्गलैण्ड से कम्पनी के डायरेक्टरों ने जो आज्ञापत्र भेजा था उसमें लिखा है कि "The manufacture of silk fabrics should be *discouraged* in Bengal, that the people should produce *raw silk* in India *to be woven* in England, that the Indian silk winders should be made to work in the Company's factories and prohibited from working outside under *severe penalties* by the authority of Government." भावार्थ–"बँगाल के लोगों को रेशम का कपड़ा बुनने से रोकना चाहिए। वहां के लोग सिर्फ़ कच्चा रेशम तैयार करें। उस रेशम के कपड़े इङ्गलैण्ड के कारख़ानों में बुने जायंगे। रेशम लपेटनेवालों को कम्पनी ही के कारख़ानों में काम करना चाहिए। यदि वे बाहर (किसी दूसरी जगह) काम करें तो उनको कड़ी सज़ा होनी चाहिए।" इस नीति का परिणाम क्या हुआ? भारतवर्ष में सिर्फ़ कच्चा माल तैयार होने लगा और वह इङ्गलैण्ड में बुना जाने लगा! भारतवर्ष के कारीगर रसातल को चले गये और इङ्गलैण्ड के कारख़ानों के मालिक मालामाल हो गये!! जो देस सिर्फ़ कच्चा माल तैयार करता है उसकी आर्थिक दशा की हीनता का वर्णन बयान से बाहर है!!! [अपूर्ण

माधवराव सप्रे।

पूर्वी आफ़रिका की दोचार बातें।

आफ़रिका के पूर्व ज़ंज़िबार या जङ्गबार नाम का एक टापू है। उससे थोड़ी दूर पर एक और छोटा सा टापू है। उसका नाम है ममबासा। जैसे बम्बई टापू था और अब स्थल से मिला लिया गया है, वैसे ही ममबासा भी पूर्वी आफ़रिका के भूमिभाग में मिल गया है। उसका टापूपन, अर्थात् द्वीपत्व, जाता रहा है। ममबासा और उसके आस पास के प्रदेश में पहले पोर्चुगीज़ों का आधिपत्य था; परन्तु, इस समय, वहां हमारे प्रभु अँगरेज़ों की प्रभुता है। उस भाग का नाम है–"ब्रिटिश ईस्ट आफ़रिका"। जहां हमारा ब्रिटिश पताका फहराया, वहां रेल पहुंची समझना चाहिए। आफ़रिका का पूर्वी भाग हाथ में आते ही गवर्नमेण्ट ने रेल चलाने का तत्काल ही प्रबन्ध किया। हिन्दोस्तान से हज़ारों कुली और बाबू भेजे गये। अनन्त धन ख़र्च करके, और अनन्त कठिनाइयों को झेल करके, ममबासा से उगण्डा तक रेल तैयार हुई; और चलने भी लगी। उसका नाम हुआ–"उगण्डा गवर्नमेण्ट रेलवे"। उस की लम्बाई कुल ६८६ मील है। वह छोटी पटरी की लाइन है और गगनचुम्बी पर्वतों को काटकर बनाई गई है। छोटी बड़ी अनेक नदियां और नाले भी लाँघने पड़े हैं। इस रेलवे के कर्म्मचारी प्रायः सभी इस देश के हैं। इनमें से एक सज्जन अच्छे पद पर हैं। समय समय पर वे वहां की मनोरञ्जक

बातें हमको लिखा करते हैं। उनकी कुछ चिट्ठियों का खुलासा हम यहां पर देते हैं।

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की इस पूर्वी आफ़रिका में सबसे बड़ा शहर ममबासा है। यहां बन्दरगाह भी है। पहले तो यह शहर कुछ न था; परन्तु जब से रेल हुई तबसे इस को बेहद तरक्की हुई है। यहां अब सैकड़ों मोमिन, भाठिये, कच्छी, पारसी और माड़वारी देख पड़ते हैं। अरबवाले तो यहां पहले ही अधिकता से थे; अब इनकी संख्या और भी बढ़ गई है। ये लोग बड़ा व्यापार करते हैं। व्यापार की यहां रोज़ बरोज़ तरक्की होती जाती है। कितने हीं बड़े बड़े अँगरेज़ व्यापारी भी यहां हैं। यहां फलों की अत्यन्त अधिकता है। आम, जामुन, केला, नारियल, नींबू, नारङ्गी, अनन्नास, और कटहल खूब होते हैं। आम और जामुन, यहां बारह महीने बना रहता है। इस देश में एक प्रकार का आम बहुत ही मीठा होता है। तौल में वह तीन पाव तक बैठता है और आकार उसका ख़रबूज़े का सा होता है। ममबासा के दस मील इधर उधर आम और जामुन आदि के जंगल के जंगल खड़े हैं। चाहे उनसे जितने फल तोड़ लिये जांय, कोई रोकने वाला नहीं।

फल देनेवाले इन प्राकृतिक बाग़ीचों के आगे बड़ा ही विकट जंगल है। यह जंगल पर्वतमय है। अनेक बड़ी बड़ी नदियां भी इसमें होकर बहती हैं। यह जंगल ऐसा घना है कि मनुष्य के लिए प्रायः अगम्य है। यह भयानक वन विकराल हिंस्र जीवों का घर है। इसमें शेर, बबर, चीता, गैंडा, हाथी, रीछ, ज़बरा, शुतुर्मुर्ग़, ज़िरफ़, अजदहा और सैकड़ों प्रकार के विभीषक सर्प विचरा करते हैं। इनके सिवा सैकड़ों तरह की विलक्षण विलक्षण चिड़ियां और दूसरे जीव भी यहां पाये जाते हैं। कितने ही वृक्ष, फूल और बेलें यहां ऐसी हैं जो शायद ही और कहीं होती होंगी। यहां का सिंह बहुत बलवान, भयङ्कर और प्रकाण्ड-काय होता है। उसका रङ्ग ऊँट का सा होता है और उसकी गरदन के बाल ११ अंगुल से भी अधिक लम्बे होकर नीचे लटते हैं। आफ़रिका के हाथी भी बहुत बड़े होते हैं। उनकी यहां बड़ी अधिकता है। आफ़रिका से ही सबसे अधिक हाथीदाँत भेजा जाता है। एक एक दाँत छः छः मन का होता है। जिस समय उगण्डा रेलवे की नाप हो रही थी, उस समय एक यञ्जिनियर साहब को एक बहुत बड़ा दाँत मिला था उसको उठाने में १८ आदमी लगे थे!

पूर्वी आफ़रिका में कुछ देश जरमनवालों ने भी अपने अधिकार में कर लिया है। उनकी और अँगरेज़ों की हद मिली हुई है। जो देश जरमनी-वालों के अधिकार में है उसमें किलेमानजारू नामक एक बहुत ऊँचा पर्वत है। उसकी सबसे ऊँची चोटियां बर्फ़ से ढकी रहती हैं। वहां केले के सिवा और कोई चीज़ नहीं होती। उसी को खाकर लोग जीते हैं। जरमनी के पादरियों ने वहां "मिशन" स्थापित किये हैं। उनके द्वारा वहां के जङ्गली किरिस्तानों को तालीम दी जाती है और किरिस्तानी धर्म्म सिखलाया जाता है। जरमनों ने भी रेल बनाई है। उसका नाम "टांगा रेलवे" है। अँगरेज़ों की पूर्वी आफ़रिका में भी सैकड़ों "मिशन" हैं। यहां भी उस देश के जङ्गली शिक्षा पाते हैं और हज़रत ईसा के अनुयायी बन कर क्रिश्चियनों की संख्या बढ़ाते हैं।

ममबासा समुद्र के किनारे और विषुववृत्त से थोड़ी ही दूर है। इस लिए यहां की आबहवा न बहुत सर्द है न बहुत गरम। उससे कोई ५० मील पश्चिम की ओर सरदी अधिक पड़ती है। ममबासा से कोई १०० मील आगे तो इतनी अधिक सरदी हो जाती है कि मोटे मोटे चार छ कम्मलों से भी जाड़ा नहीं जाता। परन्तु उगण्डा के पास, अर्थात् विक्टोरिया न्यानज़ा झील के निकटवर्ती प्रदेश में, बिलकुल सरदी नहीं है। वहां सख्त गरमी पड़ती है।

अंगरेज़ों की इस पूर्वी आफ़रिका में जङ्गली हबशियों की तीन जातियां रहती हैं—सुहेली,

वकांबे और मसाई। उगण्डा रेलवे को प्रायः पञ्जाबी कुलियों ने बनाया है; क्योंकि आफ़रिका के ये जङ्गली पहले मज़दूरी भी नहीं करते थे। असभ्यता के कारण वे सभ्यों से दूर भागते थे। परन्तु अब वे काम करने लगे हैं। पाँच रुपये तनख़्वाह अथवा पेट भर खाने को चावल देने से वे, सबेरे से शाम तक, ख़ूब काम करते हैं। उनमें से सुहेली कुछ अधिक सभ्य हैं। वे अरब और आफ़रिका के पुरातन हबशियों की सन्तति हैं। इस समय मिशनरी स्कूलों में वे शिक्षा पा रहे हैं। आशा है कि वर्ष दो वर्ष में उनमें से कितने ही सुहेली रेल में लिखने पढ़ने का काम करने लायक़ हो जायँगे।

सुहेलियों में जो क्रिश्चियन नहीं हुए वे मुसल्मान हैं; परन्तु वकांबे और मसाई जाति के लोग कोई धर्म्म नहीं रखते। वे सर्वथा धर्म्महीन और जङ्गली हैं। उनका रङ्ग तवे के समान काला होता है। उनके सिर पर भेड़ की ऊन के समान छोटे छोटे, परन्तु कोमल, केश होते हैं। डाढ़ी मूँछ उनके बिलकुल नहीं होते। स्त्री पुरुष सभी नंगे रहते हैं; और धनुर्बाण हाथ में लिये जङ्गल में, शिकार की खोज में, घूमा करते हैं। मांस और शहद ही विशेष करके इनका खाना है। ये लोग हाथीदांत, शहद, गंड़े के सींग, शुतुर्मुर्ग के पर और नाख़ून अरब और मोमिन लोगों को देकर कभी कभी उनसे ताँबे, पीतल और लोहे के तार लेते हैं। फिर उन तारों को मोड़ कर हाथ, पैर और गले में वे आभूषण की तरह पहनते हैं। जो कुछ सभ्य हैं वे मोटा कपड़ा भी बदले में लेते हैं और उसे कमर से लपेटते हैं। ये लोग पूरे निशाचर हैं। इनमें निर्दयता का अखण्ड वास है। वे अपने तीर कमान ही को अपना सर्वस्व समझते हैं, और जीव-हत्या ही को अपना व्यवसाय जानते हैं। जो लोग शहरों और नगरों के पास रहते हैं, और जिनका सभ्य आदमियों से सम्पर्क रहता है, उनमें कुछ कुछ समझ आने लगी है। इससे, कोई कोई, ज़मीन खोद कर मकई, ज्वार, और बाजरा आदि बोने लगे हैं; गाय और बकरियां रखने लगे हैं; दूध भी बेचने लगे हैं।

मसाई जाति के लोग अधिक बलवान, निडर और पराक्रमी होते हैं। उनका भी रंग कोयले की तरह काला होता है। हाथ में भाला लिए हुए वे जङ्गल में विचरा करते हैं। उनमें से कोई कोई गाय, भेड़ या बकरी की खाल से शरीर का निचला भाग ढक लेते हैं। मसाई लोग पीली या लाल मिट्टी को तेल में मिला कर अपने सारे शरीर में पोत लेते हैं। इस प्रकार के लाल पीले आदमी, उन लोगों में, बहुत ही ख़ूबसूरत समझे जाते हैं। पुरुष ज़रा आराम-तलब होते हैं; उनकी स्त्रियां ही अधिक काम करती हैं। इन लोगों के पास सिवा तूंबे के और कोई बर्तन नहीं रहता। वही उनका क़ीमती पात्र है। मसाये प्रायः स्थिर नहीं रहते; घूमना हीं उनका स्वभाव है। आज यहां, कल वहां। कभी कभी दस बीस कुटुम्ब इकट्ठे भी रह जाते हैं। ऐसे लोग फूस के छोटे छोटे झोपड़े बना लेते हैं। यों तो इनका पेट शिकार से भरता है; परन्तु जब इनको शिकार नहीं मिलता और भूख से ये बहुत पीड़ित होते हैं, तब ये ताज़े रुधिर और दूध में बकरियों की मैंगनी डालकर उसे खाते हैं। वही उनकी खीर है। बकरी के बदन में लोहे की एक पैनी सलाई वे घुसेड़ देते हैं। उससे जो रुधिर निकलता है उसे वे तूंबे में भर लेते हैं। उसमें फिर वे उसका दूना दूध मिलाते हैं। जब वह सब एक हो जाता है तब उसमें बकरियों की ताज़ी मैंगनी डाल कर उसे वे ख़ूब मिलाते हैं और मिलाकर खा जाते हैं! इनको कोई ऐसी बूटी मालूम है कि उसे लगाने से, इस प्रकार सलाई से किया हुआ बकरी के बदन का घाव, शीघ्र ही अच्छा हो जाता है।

वकांबे जाति से दूसरे जङ्गली बहुत डरते हैं। उनको विश्वास है कि वकांबे विकट जादू जानते हैं और अद्भुत अद्भुत गुण रखनेवाली जड़ी बूटियों के प्रयोग से वे जो चाहें कर सकते हैं। यह जाति भी बड़ी निर्दयी है। बड़ी बड़ी चिड़ियों को ये लोग

जाल में फाँसते हैं। फिर, जीते ही वे उनके बाल और पर उखाड़ते हैं। अनन्तर उन्हें वे आग में समूची ही जीती खड़ी कर देते हैं। इस तरह उन्हें थोड़ा बहुत झुलसा कर वे खा जाते हैं। इस जाति की स्त्रियां प्रायः दिगम्बर रहती हैं। गले और कमर में वे पत्थर के दानों की माला, कई लड़ी करके, पहनती हैं। इसे ही वे बहुमूल्य गहना समझती हैं।

इन असभ्य जङ्गली लोगों में एक विलक्षण गुण है। वह गुण सभ्यों के सीखने लायक़ है। ये लोग अपनी अपनी जातिवालों से अत्यन्त स्नेह रखते हैं। इनमें अपूर्व एका होता है। यदि दो चार के बीच में एक ही चिड़िया या एकही रोटी हो तो उसे सब बराबर बाँट कर खाते हैं। एक पर विपत्ति आने से सब जी जान से उसकी सहायता करते हैं। परन्तु ये बातें अपनी ही अपनी जाति में पाई जाती हैं। परस्पर एक दूसरी जाति से ये लोग घोर शत्रुता रखते हैं और इनमें बहुधा मार काट हुआ करती है। वकांवे सुहेलियों के जानी दुश्मन हैं और मसाई वकांवे जातिवालों के।

विद्युत्।

पाठकगण! इस विशाल विश्व में अनेकानेक पदार्थ ऐसे विचित्र और विस्मय-कारक हैं कि जिनको मनुष्य की ज्ञानशक्ति के द्वारा जानना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है; कारण यह है कि हमारी ज्ञानशक्ति अपनी परिमित सीमा के बाहर नहीं जा सकती। एक बीज से विस्तृत वृक्ष का उत्पन्न होना; पृथक् पृथक् वृक्षों की भांति भांति के फल फूल उत्पन्न करना; सीप में जलबिंदु का मौक्तिक होना; और शुक्र की एक कण से मनुष्य का उत्पन्न होना; आदि कई ऐसे विषय हैं कि जिन को समझना बड़ा कठिन है। यह सब कार्य प्रकृति का है; इसको समझना उस परमात्मा की अनन्त बुद्धि के अतिरिक्त अन्य प्राणियों की ज्ञान-सीमा के बाहर है। परन्तु यह स्वाभाविक नियम है कि मनुष्य जब किसी कार्य को देखता है तब वह उस के कारण की तुरन्त ही खोज करने लगता है। जब हम एक पदार्थ को जल में तैरता और दूसरे को डूबता हुआ देखते हैं, तब, इन दो पदार्थों की दशा को तुलना कर, इसके कारण के अन्वेषण में तत्पर हो जाते हैं। ऐसे विषयों में तर्क बड़े काम आता है। तर्क के सहारे मनुष्य ने बड़े बड़े भ्रमप्रद विषयों की खोज लगाई है। न्यूटन ने तर्क ही के सहारे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की खोज लगाई थी; और आर्कमिडीज़ ने पदार्थों का विशिष्ट गुरुत्व तर्क ही से ढूंढ़ निकाला था। प्रत्येक मनुष्य को स्वाभाविक तर्क-शक्ति होती है; परन्तु झूठे तर्क से कार्य का सच्चा कारण नहीं जाना जा सकता। ऐसे तर्क से कोई लाभ नहीं होता; वरन् लाभ के बदले उलटी हानि होती है। परन्तु, यदि, कल्पना और तर्कना न्यायपूर्वक की जांय तो इनसे अवश्यमेव बड़े बड़े गुप्त रहस्य प्रकाशित हो सकते हैं। विज्ञान-शास्त्र में इसी न्याय-युक्त तर्क और परीक्षा की सहायता से बड़े बड़े गुप्त विषयों का आविर्भाव हुआ है। जिन विषयों को हम अपनी परिमित ज्ञान-शक्ति द्वारा नहीं समझ सकते, उनको पाश्चात्य वैज्ञानिक पण्डितों की असाधारण बुद्धि और तर्क-शक्तिने सप्रमाण और सोदाहरण सिद्ध करके दिखाया है। ऐसे विषयों में एक विद्युत् भी है। विज्ञान शास्त्र में इसका जैसा विवरण है उसके कुछ अंश का वर्णन हम आज पाठकों को सुनाते हैं।

खोज करने से, कदाचित् ऐसा विरला ही मनुष्य निकले, जो विद्युत को न जानता हो। हम, नित्य बिजुली से तार का आना; वर्षा ऋतु में आकाश में उसका चमकना; पदार्थों पर उसका गिरना; शरीर में प्रवेश करने से उसके द्वारा मनुष्य का मूर्छित होना, मरना; इत्यादि कई कार्य देखते हैं। हम यह भी जानते हैं कि वह और पदार्थों की अपेक्षा धातु के बने पदार्थों पर अधिक गिरती है। यह पाश्चात्य विद्वानों ही का असाधारण परिश्रम है

जिन्होंने इसका कारण ढूंढ निकाला। हमारे देश में बहुत कम मनुष्य इन बातों को जानते होंगे। अतएव हम यहां पर विद्युत् का सच्चा स्वरूप वर्णन करते हैं।

मूलतत्व।

परीक्षा द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विद्युत् कोई पदार्थ नहीं है। किसी कार्य के करने में हमारी जो शक्ति व्यय होती है उसी से विद्युत् की उत्पत्ति है। विद्युत् एक प्रबल शक्ति को कहते हैं। वह विशेषतः आकर्षण और निराकर्षण द्वारा अपने को प्रगट करती है। परन्तु प्रकाश, उष्णता, आकस्मिक निर्घात और रासायनिक पृथक्-करण इत्यादि और भी कई बातों से इसका सम्बन्ध है। आकर्षण-शक्ति के समान यह पदार्थों में सदैव विद्यमान नहीं रहती; परन्तु कई कारणों से उनमें उत्पन्न हो जाती है। इन कारणों में घर्षण, पीड़न (एक वस्तु का दूसरी पर दबाव) उष्णता और चुम्बक—ये मुख्य हैं।

ईसा के ६०० वर्ष पूर्व पहले पहल थेलस् (Thales) नामक तत्ववेत्ता ने परीक्षा द्वारा यह जाना कि तृणमणि (amber) को रेशम पर रगड़ने से उसमें हलके और छोटे छोटे पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। छठे शतक के अनन्तर प्लीनी (Pliny) नामक वैज्ञानिक ने तृणमणि के विषय में लिखते समय एक स्थान पर लिखा है कि तृणमणि को अँगुलियों से रगड़ने पर उसमें उष्णता उत्पन्न होकर प्राण से आ जाते हैं; और वह तृण को इस प्रकार खींचता है जैसे चुम्बक पत्थर लोहचूर्ण के कणों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

विद्युत् के विषय में प्राचीन काल में इसके सिवा और अधिक कुछ नहीं जाना गया था। रानी एलिज़बेथ के समय में उनके चिकित्सक डाक्टर गिलबर्ट (Gilbert) ने प्रकट किया कि घर्षणोत्पादित आकर्षणशक्ति केवल तृणमणि में ही नहीं रहती; किन्तु गन्धक, मोम, कांच इत्यादि अन्य पदार्थ भी फलैनल (Flannel) और बिल्ली के चमड़े से रगड़े जाने पर हलके पदार्थों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जब हम कांच की एक छड़ी हाथ में लेकर उसका एक छोर रेशमी वस्त्र से घिसते हैं, तब छड़ी में विद्युत् उत्पन्न हो जाती है। उस समय रेशम अथवा ऊन के धागे के टुकड़े, पर, काग़ज़ के टुकड़े और सोने चांदी के वर्क़ इत्यादि छड़ी के निकट लाने से आकर्षित होकर उसके साथ चिपक जाते हैं; परन्तु तुरन्त ही निराकर्षित होकर अलग भी हो जाते हैं। इसका कारण आगे चलकर समझाया जायगा। घर्षण से केवल आकर्षणशक्ति ही नहीं उत्पन्न होती; किन्तु अंधेरे में ले जाने से ये पदार्थ प्रकाश भी प्रकट करने लगते हैं। घर्षित पदार्थों से अग्निकण निकलने लगते हैं और दूसरे भी कई उत्पात होते हैं। इन सबका कारण विद्युत् है। यदि हम पूर्वोक्त घर्षित छड़ी को अपने मुंह के पास ले जावें तो एक प्रकार की विचित्र स्फुरणशील चेतना उत्पन्न होती है; और ऐसा जान पड़ता है कि मानो सिर को कोई आगे पकड़ कर खींच रहा है।

प्राचीन काल में विद्युच्छास्त्र की उन्नत्ति बहुत कम थी; परन्तु अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में यह शास्त्र औरों की अपेक्षा अधिक ऊंचे शिखर पर चढ़ गया। गत ७० या ८० बरस में इतने अलौकिक आविष्कार इस की सहायता से हुए हैं और वे इतने विचित्र और उपयोगी हैं कि मनुष्य विद्युत् को तुलना ईश्वरीशक्ति से करने लगे हैं।

यह जानने के लिए कि अमुक पदार्थ में विद्युत् उत्पन्न हुई है या नहीं, एक प्रकार के यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। ऐसे यन्त्र को "विद्युन्निरूपक" यन्त्र कहते हैं। उसका एक चित्र हम अगले कालम में देते हैं।

इसकी रचना इस प्रकार है—

कांच के एक ऊंचे आसन (अ) पर तांबे की एक गोल पतली छड़ी (ब) रहती है। इसका ऊपरी छोर कुछ मुड़ा रहता है। इस छोर में रेशम की

डोरी से करब या और किसी बहुत ही हलकी लकड़ी के गूदे का एक गोल टुकड़ा (क) लटकता रहता है। जिस पदार्थ की परीक्षा करनी होती है वह इस यंत्र के पास लाया जाता है। यदि उसमें विद्युत् उत्पन्न हुई होगी तो वह तुरन्त उस गोल टुकड़े (गेंद) को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा; अन्यथा नहीं। इस यंत्र से उन पदार्थों की परीक्षा

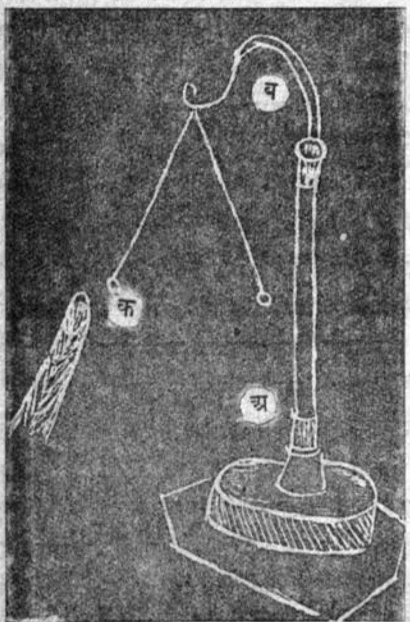

नहीं हो सकती जिनमें थोड़ी ही विद्युत् प्रविष्ट होती है। ऐसे पदार्थों की परीक्षा के लिए अधिक संशीर्ण और कोमल यन्त्रों की आवश्यकता होती है। घर्षणोत्पादित विद्युत् पदार्थ के उसी भाग के धरातल पर रहती है जहां वह घिसा जाता है। यह विद्युत् दूसरे पदार्थ के धरातल पर भी लाई जा सकती है। इस कार्य के लिये किसी यन्त्र की आवश्यकता नहीं होती; विद्युत-प्रविष्ट पदार्थ के स्पर्श मात्र से दूसरे पदार्थ में उसीके समान विद्युत् प्रविष्ट हो जाती है। विद्युन्निरूपक यन्त्र के निकट इस पदार्थ को लाने से इसका भी व्यवहार उसीके समान होता है।

यह लिखा जा चुका है कि विद्युत्-प्रविष्ट पदार्थ को विद्युत्-निरूपक के पास लाने से वह गेंद को अपनी ओर खींचता है। इन दोनों के स्पर्श से कांच की छड़ी की विद्युत् गेंद में प्रवेश कर जाती है। प्रवेश करते ही तुरन्त वह गेंद छड़ी से निराकर्षित हो कर दूर हो जाता है। जब तक गेंद और छड़ी में विद्युत् विद्यमान रहती है तब तक दोनों पदार्थों को पास लाने से आपस में निराकर्षण होता रहता है। यदि मोम को छड़ी में रोम घर्षण द्वारा विद्युत् प्रवेशित कर उसे विद्युन्निरूपक के निकट ले जावें तो वह भी कांच की छड़ी के समान व्यवहार करती है। तरह तरह के पदार्थों की परीक्षा करने से यह सिद्ध होता है कि वे पदार्थ जिनमें एक प्रकार की विद्युत् रहती है आपस में एक दूसरे को निराकर्षित करते रहते हैं। यदि हम गेंद को कांच की नली से स्पर्श कराके उसके निकट यदि मोम की छड़ी लावें तो निराकर्षण की अपेक्षा आकर्षण होता है। और यदि पहले मोम की छड़ी स्पर्श करा कर अनन्तर कांच की छड़ी उसके निकट लावें तो आकर्षण होता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि कांच और मोम की छड़ियों में भिन्न भिन्न प्रकार की विद्युत् विद्यमान हैं। एक कांच के और एक लकड़ी के वर्तुलाकार चक्र से यह भेद सहज ही समझ में आ सकता है। लकड़ी के चक्र पर रेशमी वस्त्र मढ़ा रहता है। पकड़ने के लिये इनके मध्य में कांच की छड़ियां लगी रहती हैं। यदि इन दोनों चक्रों को कांचकी छड़ियों द्वारा पकड़ कर हम आपसमें घर्षित करें (चित्र देखो) और विद्युन्निरूपक

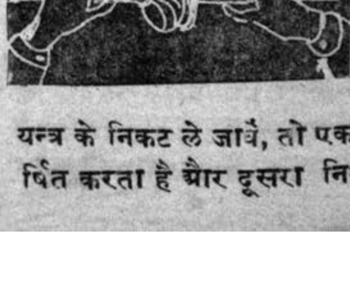

यन्त्र के निकट ले जावें, तो एक चक्र गेंद को आकर्षित करता है और दूसरा निराकर्षित करता है।

इस प्रकार की परीक्षाओं से ग्रफ़े साहब ने प्रथम यह बात सिद्ध की कि पदार्थों में विद्युत् दो प्रकार की उत्पन्न होती है और दोनों का व्यवहार जुदा जुदा होता है। कांच और रेशम के घर्षण से एक प्रकार की और मोम और ऊनी वस्त्र के घर्षण से दूसरे प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होती है। पदार्थों में भिन्न भिन्न प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होने का कारण ढूंढ़ने के लिए कई कल्पनायें की गई हैं। इन सब में सिमर (Symmer) नामक तत्ववेत्ता की युक्ति बहुत न्यायसङ्गत है। उस का कथन है कि प्रत्येक पदार्थ में एक प्रकार का सूक्ष्म और हलका पदार्थ होता है जिसे 'विद्युद्रस' कहते हैं। यह रस दो प्रकार के रसों के मेल से बनता है। इनको अङ्गरेज़ी में पाज़ेटिव (Positve) और नेगेटिव (Negative) रस कहते हैं। हिन्दी में इन के लिये विशेष शब्द न होने से इन्हींको स्मरण रखना चाहिये। आपस के संसर्ग से ये रस प्रायः नष्टशक्ति हो जाते हैं और घर्षण इत्यादि के द्वारा पृथक् पृथक् किये जा सकते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि बिना एक के दूसरा कदापि नहीं उत्तेजित हो सकता। दो पदार्थों के घर्षण से एक पदार्थ का पाज़ेटिव रस दूसरे में और दूसरे का नेगेटिव रस पहले में प्रवेश करता है। अतएव दूसरे में पाज़ेटिव और पहले में नेगेटिव विद्युत् उत्पन्न होती हैं। पाज़ेटिव और नेगेटिव शब्दों का पहले पहल प्रयोग करनेवाला फ्रैंकलिन था।

विद्युच्छास्त्र में आकर्षण और निराकर्षण के विषय में जो कुछ कहा गया है उसका तत्वार्थ यह है कि समानविद्युत् प्रविष्ट दो पदार्थ आपस में एक दूसरे को निराकर्षित करते हैं; और असमान विद्युत्प्रविष्ट दो पदार्थ आपस में एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। इन दो नियमों से पाठकगण समझ गये होंगे कि क्यों कांच की छड़ी गेंद को आकर्षित करके उसे तुरन्त निराकर्षित कर देती है।

इस शास्त्र में पदार्थों के दो विभाग किये गये हैं। एक प्रवाहक और दूसरे अप्रवाहक। कांच की छड़ी का एक छोर घिस कर विद्युन्निरूपक यन्त्र के समीप लाने से वही भाग गेंद को आकर्षित करता है जहां पर कि घर्षण किया गया है। इस पदार्थ के एक भाग में उत्पन्न की गई विद्युत् दूसरे भाग को नहीं जा सकती। ऐसे पदार्थों को अप्रवाहक कहते हैं। परीक्षा करने से मालूम होगा कि यदि धातु के बने हुए पदार्थों के किसी भाग पर विद्युत् उत्पन्न की जाय तो वह तुरन्त धरातल के दूसरे भागों में भी चली जाती है। ऐसे पदार्थों को प्रवाहक कहते हैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो पूरा प्रवाहक अथवा अप्रवाहक हो। जिन पदार्थों में प्रवाहक शक्ति अधिक होती है उन्हें प्रवाहक कहते हैं। जिनमें अप्रवाहक शक्ति अधिक होती है वे अप्रवाहक कहते हैं। जिन पदार्थों की प्रवाहक और अप्रवाहक शक्ति में अधिक अन्तर नहीं होता वे अर्धप्रवाहक कहलाते हैं। स्मरणार्थ एक कोष्टक नीचे दिया जाता है।

प्रवाहक	अर्ध प्रवाहक	अप्रवाहक
धातु, जल, बर्फ़ वनस्पति, प्राणी नमक और रुई आदि।	मद्य, कागज़ कांच का चूर्ण, और सूखी लकड़ी आदि।	रेशम, चूना, हीरा, कांच, गन्धक, राल, मोम, इत्यादि।

जब दो पदार्थ आपस में घिसे जाते हैं तब दोनों प्रकार की विद्युत् बराबर बराबर उत्पन्न हो जाती

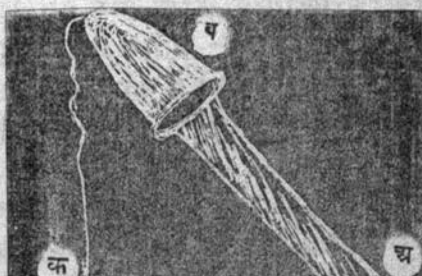

हैं; परन्तु एक पदार्थ पाज़ेटिव और दूसरा नेगेटिव ग्रहण करता है। यदि हाथ को लकड़ी से रगड़े